आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-२० * अंक-३ * नवम्बर-२०२५

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

• जैसे अन्य धातुओंके संयोगसे स्वर्णमें अनेक प्रकारके रूप दिखाई देते हैं परन्तु यदि परसंयोगसे होनेवाली इन स्वर्णकी अवस्थाओंके ऊपर ध्यान नहीं देने पर उस स्वर्णको ही देखे तो वह स्वर्ण, शुद्धस्वर्ण ही प्रतीत होता है। वैसे ही जीव भी विकारके कारणसे अजीव, आस्रवादि पदार्थोंमें अशुद्धरूपसे देखनेमें आता है, परन्तु यदि उस विकारकी उपेक्षा करके उसे देखा जावे तो वह जीव शुद्ध ही प्रतीत होता है।१२४।

(श्री राजमल्लजी, पंचाध्यायी भाग-२, गाथा-४५८ भावार्थ)

• जीवादि अवस्था-निगोदसे लेकर अंत अवस्था, सिद्ध पर्यायपर्यन्त अपने परिपूर्ण स्वभावसे संयुक्त है और परद्रव्योंकी कल्पनासे रहित है, सदैव एक चैतन्यरससे सम्पन्न है, ऐसा शुद्धनयकी अपेक्षा जिनवाणीमें कहा है।१२५।

(पं. बनारसीदासजी, नाटक समयसार-जीवद्वार, पद-११)

• प्रश्न—साम्प्रत (वर्तमानमें) जीवद्रव्य रागादि अशुद्ध चेतनारूप परिणमा है वहाँ तो ऐसा प्रतिभासता है कि ज्ञान, क्रोधरूप परिणमता है सो ज्ञान भिन्न, क्रोध भिन्न—ऐसा अनुभवना अति ही कठिन है।

उत्तर—इस प्रकार है कि सच ही कठिन है परन्तु वस्तुका शुद्धस्वरूप विचारने पर भिन्नपनेरूप स्वाद आता है। कैसा है भिन्नपना ? 'कर्मका कर्ता जीव' ऐसी भ्रान्ति, उसको मूलसे दूर करता है। दृष्टांत कहते हैं—जिस प्रकार अग्नि और पानीका उष्णपना तथा शीतलपना, उनका भेद निजस्वरूपग्राही ज्ञानके द्वारा प्रकट होता है।१२६।

(श्री राजमल्लजी, कलशटीका, कलश-६०)

• शिष्य पूछता है—राग-द्वेष आदि कर्मजनित हैं या जीवजनित हैं ? उसका उत्तर—स्त्री और पुरुष इन दोनोंके संयोगसे उत्पन्न हुए पुत्रकी भाँति, चूना और हल्दीके मिश्रणसे उत्पन्न हुए वर्ण विशेषकी भाँति, राग-द्वेष आदि जीव और कर्म इन दोनोंके संयोगजनित हैं। नयकी विवक्षाके अनुसार, विवक्षित एकदेश शुद्ध निश्चयनयसे राग-द्वेष कर्मजनित कहलाते हैं और अशुद्ध निश्चयनयसे जीवजनित कहलाते हैं। यह अशुद्ध निश्चयनय, शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षासे व्यवहार ही है।

प्रश्न : साक्षात् शुद्धनयसे यह राग-द्वेष किसके है? ऐसा हम पूछते हैं ।

उत्तर : साक्षात् शुद्धनयसे स्त्री और पुरुषके संयोगरहित पुत्रकी भांति, जैसे चूना और हल्दीके संयोग रहित रंग विशेषकी तरह, उसकी (राग-द्वेषादिकी) उत्पत्ति ही नहीं होती, तो उत्तर किस प्रकारसे दे? ।१२७।(श्री नेमिचंद्र सिद्धांतदेव, बृहद् द्रव्यसंग्रह, गाथा-४८)

वर्ष-20
अंक-3

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2081
November
A.D. 2025

परमागम श्री प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन

(गाथा ७९-८० के प्रवचनमेंसे)

पुण्य दुःखका साधन है

यहाँ आचार्य भगवान स्वयंकी बात करते है। स्वयंके आत्माका मनन करते उपदेश सहज निकल गया है। उपदेश देने हेतु करते नहीं है। मुनिओंने सर्व सावद्ययोग छोड़ दिया है। मिथ्यात्वरूपी भ्रांतिके अंतरके वस्त्रका भी त्याग किया है और बाह्यमें तो वस्त्र होते ही नहीं है ऐसे निर्ग्रंथ मुनि अंतरमें अविकारी–अंतर आत्ममनन सहित होते है। आचार्य भगवानने अशुभभावको तो छोड़ दिया है लेकिन ''अंतरमें महाव्रतादि शुभ परिणामके वश होकर मोहका सर्वथा नाश न करूँ तो मुझे शुद्धात्माकी प्राप्ति कहाँसे होगी?''–ऐसे पुरुषार्थकी उग्रताकी वृद्धि करते है। स्वयंके पुरुषार्थको संबोधन करते है कि ''चैतन्यकी स्थिरतामें जा, पंचमहाव्रतमें मत जा।'' जैसे कमजोर शरीरवाला कमरमें पट्टा लगाकर सीधा होता है वैसे यहाँ आचार्य भगवान ज्ञानरूपी शरीरनाले आत्माकी कमरको बाँधकर सीधा होते है। ''हे आत्मा ! शुभ विकारमें मत जाना।''

यह प्रवचनसारकी ७९वीं गाथा है। लौकिकमें जैसे रामचंद्रजी राज्य (लंका)को जीतकर विजयादशमीको आये थे वैसे आज आत्मा मोहादिको जीतकर आया है। यह लोकोत्तर बात है। जो जीव पापारंभ छोड़कर शुभचारित्र अर्थात् पाँच महाव्रत आदि पालनमें होने पर भी यदि मोहादिको छोड़ता नहीं है तो वह शुद्धात्माको प्राप्त होता नहीं है। मुनिने

व्यापारादिके पापभावको छोड़ दिया है और परम समता स्वभावमें लीनतारूपी परम सामायिक नामके चारित्रकी प्रतिज्ञा की है। यहाँ प्रत्याख्यान स्वरूपका अर्थ ज्ञानमें परभावोंके त्यागरूप अवस्था वह प्रत्याख्यान है। इसलिये मुनिओंने शुभाशुभभावोंका त्यागरूप प्रत्याख्यान स्वरूप सामायिक चारित्र अर्थात् स्वयंके शुद्ध स्वभावमें लीनता करना—ऐसी प्रतिज्ञा की है। तदपि जो मुनि शुभके प्रेममें फस जाते है वे शुद्ध आत्मा अर्थात् मोक्षदशाको प्राप्त होते नहीं है। यहाँ आचार्य भगवानने स्वयंकी बात करके पश्चात् जो मोहकी बात रखी है वह मिथ्यात्व सहितके मोहकी बात समझना। टीकामें शुभउपयोगको धूर्त गणिका-स्त्रीकी उपमा दी है। स्वयंके स्वभावकी उग्रता बताने हेतु शुभोपयोगको बहुत ही अपमानित किया है। शुभोपयोग धूर्त वेश्या समान परिणति है। उसमें अज्ञानी जीव फँस जाता है। पाँच महाव्रत आदि शुभभावसे मानो चारित्र टिकता हो ऐसा अज्ञानीको लगता है। इसलिये शुभभावको धूर्त कहा है।

अज्ञानी जीव मन, वचन, कायाको बिठाकर रखना उसे सामायिक कहते है। सामायिक पाठके अर्थकी भी खबर नहीं है। तस्स उत्तरीके पाठमें विशल्ली करणेणं आदि वाक्य आते है उसमें मिथ्यात्व शल्य, मायाशल्य, निदानशल्य यह तीन प्रकारके शल्योंका नाश करता हूँ। ऐसा उसका अर्थ है। देहकी क्रियासे और पुण्यसे धर्म होता है ऐसी मान्यता वह बड़ा शल्य है। ऐसे शल्यका अर्थ समझे नहीं और मात्र पाठ बोले जाय उसे सामायिक, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान यथार्थ हो सकते नहीं है और उसे धर्म होता नहीं है।

जो जीव वस्तुस्वरूप समझे बिना पूजादि शुभभावमें धर्म मानकर तीव्र रुचि करता है वह जैसे लूटनेवाली वेश्याके प्रेमजालमें फँस जाता है वैसे अज्ञानी जीव शुभमें फँस जाता है। यहाँ दया, दानादि शुभभावको मोहकी सेना कही है। वह मोहकी सेनाके वश होकर पुण्य-पापरूपी विकारकी धूलको निकालता नहीं है। यहाँ मोहको धूलकी उपमा दी है। जैसे कपड़ेको हिलाने पर धूल शीघ्र अलग हो जाती है। मोहको धूलकी तरह शीघ्र अलग कर देना चाहिये। तदपि जो जीव मोहको निकालता नहीं है वह जीव दुःखके नजदीक है अर्थात् क्रमशः नरक, निगोदमें जायेगा और निर्मल आत्माको प्राप्त नहीं कर पायेगा।

यहाँ आचार्य भगवानने मिथ्यादृष्टिकी बात करके स्वयंके पुरुषार्थकी उग्रता करनेको

त्रियमितं धर्ममय तत्त्व गाया प्रभू,
नैक नयकी अपेक्षा, जगतगुरु प्रभू! ११८।

कहते है कि मोह पर विजय करनेमें कमर कस ली है। आचार्य भगवानने मिथ्यात्वकी व अशुभभावकी धूलको निकाल दिया है और अस्थिरभावके शुभभावकी धूलको निकालनेको तत्पर हुए है। सम्यग्दर्शन तो अपूर्व है लेकिन दर्शन सहितकी स्वरूप लीनतावाले निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनिकी दशा अपूर्व है। अस्थिरताके शुभभावमें थोड़ी कमर झुक जाती है उस दशाको टालने और आत्मामें स्थिर होकर सीधे होने हेतु आचार्य पुरुषार्थ प्रारम्भ करते है। आज विजयादशमी है। मोहकी सेना पर विजयध्वज लहेराते हैं। स्वराज्यका विजयध्वज कहीं बाहरमें नहीं है। बाह्यमें सुख या दुःख नहीं है। स्वराज्य स्वयंके अंतरमें है। यहाँ तो अशुभभावका अभाव करके शुभभावको जितने हेतु आचार्य पुरुषार्थका प्रारम्भ करते है। और शुद्धोपयोग एक ही शरण है–ऐसा कहते है।

यह ८०वीं गाथा क्षायिक समकितकी है। तीर्थंकर भगवान, केवली या श्रुतकेवलीकी सभामें लायक जीव स्वयंके पुरुषार्थसे क्षायिक समकित प्रकट करते है। कुंदकुंदाचार्य भगवान दो हजार वर्ष पूर्व और अमृतचंद्राचार्य एक हजार वर्ष पूर्व इस भरतक्षेत्रमें पंचमकालमें हुए। लेकिन पंचमकालमें भी क्षायिक समकित प्रकट करे ऐसे पुरुषार्थवाले समकितीको जयधोष कर रहे है। आज विजयादशमीका विजय दिवस है और क्षायिक समकित जो केवलज्ञानदशाको प्रकट करे ऐसे समकितीकी आज ८०वीं गाथा अलौकिक बहुत ऊँची आयी है।

जो जीव अर्हंतको द्रव्यरूप, गुणरूप और पर्यायरूप जानता है वह स्वयंके आत्माको जानता है और उसका मोह अवश्य नाश होता है। अर्थात् जो क्षायिक समकित प्रकट होता है, निमित्तरूप दर्शनमोहकी सात प्रकृति का नाश हुआ है। जिसने स्वयंमें शुद्धिकी अधिक वृद्धि की है वह अब आगे वृद्धि करता रहेगा वापिस नहीं आयेगा और केवलज्ञानदशा प्रकट करे ऐसे जीवकी क्षायिक समकितीकी बात कही जाती है।

प्रश्न : यहाँ अर्हंत भगवानके स्वरूपको जाननेकी बात की लेकिन सिद्धके स्वरूपको जाननेकी बात क्यों नहीं की ? पुनश्च जब गाथा लिखी गई तब भरतक्षेत्रमें अर्हंत नहीं थे और भगवान महावीर तो उस समयमें सिद्ध हो गये थे।

उत्तर : कुंदकुंदाचार्य भगवान साक्षात् महाविदेहमें गये थे वहाँ त्रिलोकनाथ अर्हंतदेव

अहिंसा जगत् ब्रह्म परमं कही है,
जहां अल्प आरंभ वहां नहीं रही रहै;

वर्तमान सीमंधर भगवान बिराजते है। उनकी वाणी उन्होंने सुनी है और उसे स्वयंके अनुभवमें उस रणकारकी बात की है। पुनश्च सिद्ध भगवान तो शरीर और वाणी रहित है जब कि अरिहंतको वाणी होती है। इसलिये अर्हंत भगवान धर्मप्राप्तिमें मुख्य उपकारी है। इसलिये यहाँ अर्हंतके स्वरूपको जाननेकी बात की है। पुनः अरिहंत और सिद्धके केवलज्ञानमें कोई अंतर नहीं है और अर्हतका स्वरूप जानते सिद्धका स्वरूप जाननेमें आ जाता है।

श्रीमद्जीके काव्यमें भी कहा है कि : ''इच्छते है जो योगीजन, अनंत सुख स्वरूप,
मूल शुद्ध ते आत्मपद, सयोगी जिन स्वरूप।''

इस काव्यमें ''सयोगी जिनस्वरूप'' कहा है अर्थात् अंतरमें अर्हंतकी प्राप्तिकी भावना है। अर्हंतसे मिल सकते है। सिद्धसे नहीं मिल सकते। यह उनकी अंतिम भावना थी। यहाँ अर्हंतका स्वरूप वह आदर्श दर्पण है। कर्म, काल या पांचवाँ काल उसे अवरोधरूप नहीं है। पंचमकालके मुनि लिखते है। पुरुषार्थके आगे काल दास हो जाता है, जो पुरुषार्थ करते है वह समकित प्राप्त कर सकता है।

अज्ञानी जीव णमो अरिहंताणं लाखों बार बोल जाय लेकिन अरिहंतके स्वरूपको जानता नहीं है। विकार करे, उपदेश दे, जगतके जीवोंको पार पहुँचाये, शिष्योंको (संसारसे) पार पहुँचाए, चार तीर्थकी स्थापना करे वह अर्हंत–ऐसे अरिहंतका स्वरूप अज्ञानी जानता है, लेकिन वह यथार्थ स्वरूप नहीं है। शरीर, मन, वाणी जड़ है। अन्य जीव जो संसारसे पार होते है वह स्वयंसे पार होते है। अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य प्रकट हुआ है वह अरिहंतका स्वरूप है। अज्ञानी जीव ''भगवानने देखा होगा ऐसा होगा''–ऐसा कहकर स्वच्छंदमें रहते है, लेकिन ''अरिहंतका स्वरूप है ऐसा ही मेरा स्वरूप है।''–ऐसा निश्चय करने पर परपदार्थका अहंकर निकल जाता है और ज्ञातादृष्टा रह जाता है। कोई कहे कि ''हम अपने आत्माको जान सकते है लेकिन केवलज्ञानीका नक्की नहीं कर सकते''–तो यह बात मिथ्या है। आत्माको जानते अर्हंतका स्वरूप जाननेमें आ जाता है और अरिहंतके स्वरूपको जानते आत्मा जाननेमें आ जाता है।

इस गाथामें अरिहंतके स्वरूपका जानपना अर्थात् आत्माका जानपना वह सम्यग्दर्शनका कारण है। अरिहंतका द्रव्य, उनका ज्ञान, दर्शन, वीर्य ऐसे अनंतगुण तथा एक

(शेष देखे पृष्ठ २३ पर)

अहिंसाके अर्थ तजा द्वय परिग्रह,
दयामय प्रभू वेष छोडा उपधिमय।११९।

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-४३ (गाथा-३८)

निज निधानको खोलनेकी चाबी

भगवानकी वाणीमें हेय-उपादेय तत्त्वकी बात आती है, उसे शिष्य यथार्थरूपसे ग्रहण कर ले कि आनंदस्वरूप निज आत्मा उपादेय है और रागादि सर्व हेय है। ऐसा पकड़कर भेदज्ञान कर ले तो स्वयं ही स्वयंका गुरु बन जाता है और उसमें भगवान निमित्त है।

यहाँ पूज्यपादस्वामीने अमृतचंद्र आचार्यका कलश दिया है और बनारसीदासने किये हिन्दी अनुवादका आधार दिया है कि भाई ! तू कहता है कि मुझे सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो ? लेकिन भाई ! तू मेरा उपदेश मान कि छह महिने तक जगतसे उदास होकर, संकल्प-विकल्पका विकार छोड़कर एकांतमें स्थिर होकर आत्माके अनुभवका प्रयत्न कर तो तुझे अवश्य सम्यग्दर्शन होगा। तेरे घटरूपी सरोवरमें तू कमल समान बनकर तू ही उसकी सुगंध लेने लगेगा। लोग मेट्रीक और एल.एल.बी. के अभ्यासमें वर्षों व्यतीत करते है तो यहाँ को मात्र छह महिनेका अभ्यास कहा है कि तू छह महिने तक एक आत्माकी लगनी लगाकर तो देख ! फिर तुझे अनुभव नहीं हो तो मुझे कहना।

सर्वज्ञ परमात्मा भी आत्माकी इतनी महिमा प्रसिद्ध करते है कि तेरा स्वरूप ऐसा है कि मेरी वाणीमें पूर्णरूपसे नहीं आ सकता। 'जो स्वरूप सर्वज्ञने देखा ज्ञानमें, कह न सके उसको भी श्री भगवान, उस स्वरूपको अन्य वाणी तो क्या कहे ? अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो !' ऐसा भगवान आत्मा एक समयमें अनंतगुणकी खदान पड़ी है वह कैसे प्राप्त न हो ? होगा ही। तू निश्चित कर कि मुझे मेरा भगवान आत्मा प्राप्त होगा ही। उसके लिये लीनता लगनी चाहिये।

आचार्य शिष्यको उपदेश देते है कि हे भाई ! ठहर जा, तीर्थयात्रा करनेसे कल्याण होगा कि व्रत-भक्ति, पूजा करनेसे कल्याण होगा ऐसा व्यर्थ शोर-हल्ला छोड़कर निश्चिंत होकर छह मास तक एकांतमें तेरे आत्माका अवलोकन तो कर ! यह छह मास तो अधिकसे अधिक समय दिया है। अंतर्मुहूर्तमें भी आत्माका दर्शन हो सकता है। इसके लिये तू देख !

आपका अंग भूषण, वचनसे रहित,
इन्द्रियां शांत जहं, कहत तुम कामजित;

हृदयरूपी सरोवरमें, कर्म, वाणी, मन, शरीरादि पुद्गलसे भिन्न चैतन्यके तेजसे भरपूर आत्माकी तुझे उपलब्धि होगी, अवश्य होगी। बाह्यमें एक वस्तु मिले वहाँ तो देखनेमें एकाकार हो जाता है यह तो सभीको देखनेवाला, जाननेवाला महान चैतन्य तेज है उसे गुरुगमसे यथार्थ समझकर उसका अभ्यास कर और अवलोकन कर तो तुझे उसकी प्राप्ति होगी, अवश्य होगी।

अब ३९वीं गाथामें आत्मसंवित्ति वृद्धिगत होनेसे क्या क्या होता है और परिणति कैसी होने लगती है उस बातको पूज्यपादस्वामी समझाते है।

आत्मसंवित्ति अर्थात् आत्माका वेदन-ज्ञान, आनंद, शांतिका अनुभव हो उसे आत्मसंवित्ति कहते है।

निशामयति निःशेषमिन्द्रजालोपमं जगत्।
स्पृहयत्यात्मलाभाय गत्वान्यत्रानुतप्यते॥३९॥

इन्द्रजाल सम देख जग, आतमहित चित्त लाय,
अन्यत्र चित्त जाय दो, मनमां ते पस्ताय. ३९.

योगी कहते जिसने आत्माकी दृष्टि की है और उसमें शामिल हुआ है ऐसे ज्ञानी समस्त संसारको इन्द्रजाल समान जानते है। आत्मसिद्धिमें ज्ञानीकी दशाका वर्णन करते हुये श्रीमद् राजचंद्र कहते है कि 'सकल जगत ते ऐंठवत्, अथवा स्वप्न समान, ते कहीए ज्ञानीदशा, बाकी वाचा ज्ञान।'

धर्मी सारे जगतको सड़ा हुआ समान जानते है क्योंकि जीवको प्रत्येक वस्तुका संयोग अनंतबार हुआ है वह ही संयोग फिरसे मिला है, इसलिये वह सड़ा हुआ है, अथवा स्वप्नमें बहुत वैभव आदि देखा लेकिन निद्रा समाप्त होने पर उसमें कुछ भी होता नहीं है। इसलिये यह सब कुछ वैभव स्वप्नके समान है, ऐसा जानते होनेसे ज्ञानीको उसमें रुचि होती नहीं है। और अज्ञानी वह वैभव आदि अनुकूल सामग्रीके उत्साहमें ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे और वृद्धा-वस्थामें धर्म करेंगे ऐसा सोचते सोचते मर जाता है। और पुनः अच्छे भवको पाता नहीं है।

धर्मी तो एक आत्मस्वरूपकी प्राप्तिकी अभिलाषा करता है, तथा जो कदाचित् अन्य

(शेष देखे पृष्ठ २३ पर)

उग्र शस्त्रं विना निर्दयी क्रोध जित,
आप निर्मोह, शममय, शरण राख नित। १२०।

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

निर्विकल्प-स्वानुभवका प्रत्यक्षपना

''प्रश्न :–इस स्वानुभवमें भी आत्मा परोक्ष ही है, तब ग्रन्थोंमें उस अनुभवको प्रत्यक्ष क्यों कहा है ? उपरोक्त गाथामें ही (पृ. ३८में) कहा है कि 'पच्चक्खो अणुहवो जह्मा।'

इसका समाधान :–अनुभवमें आत्मा तो परोक्ष ही है, उसमें आत्माके प्रदेशका आकार तो दिखता नहीं; परन्तु स्वरूपमें परिणाम मग्न होनेसे जो स्वानुभव हुआ वह प्रत्यक्ष है। इस स्वानुभवका स्वाद वह आगम-अनुमानादिक परोक्षप्रमाणादिके द्वारा नहीं जानता, किन्तु आप ही उस अनुभवके रसास्वादको वेदता है। जैसे कोई अंध मनुष्य शक्करको आस्वादता है उसे शक्करके आकारादि तो परोक्ष हैं परन्तु जीभके द्वारा जो स्वाद लिया है वह स्वाद प्रत्यक्ष है–ऐसा जानना। (इसी प्रकार स्वानुभवका भी प्रत्यक्षपना जानना।)

अथवा, जो प्रत्यक्ष जैसा हो उसे ही प्रत्यक्ष कहनेमें आता है; जैसे लोकमें भी कहते हैं कि 'हमने स्वप्नमें या ध्यानमें अमुक पुरुषको प्रत्यक्ष देखा'—वहाँ प्रत्यक्ष देखा नहीं परन्तु प्रत्यक्षकी तरह प्रत्यक्षवत् यथार्थ देखा इसलिये उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। वैसे अनुभवमें आत्मा प्रत्यक्षकी तरह यथार्थ प्रतिभासित होता है, अतः इस न्यायसे आत्माका भी प्रत्यक्ष जानना होता है–ऐसा कहते हैं, इसमें दोष नहीं। कथन अनेक प्रकारके हैं, इन सबको आगम-अध्यात्मशास्त्रोंके साथ विरोध न हो इस प्रकारस विवक्षाभेद द्वारा जानना।''

साधकके इस स्वानुभवमें मति-श्रुतज्ञान है। इस अपेक्षासे इसे भले ही परोक्ष कहा, परन्तु स्वानुभवके आनंदका वेदन तो मति-श्रुतज्ञानीके भी केवलज्ञानी जैसा साक्षात् है; आनंदका वेदन परोक्ष नहीं; इसलिये स्वानुभवको प्रत्यक्ष कहा है। जैसे अंधमनुष्य शक्करके रंग आदिको नजरोंसे नहीं देखता इस अपेक्षासे शक्कर उसे परोक्ष है परंतु मुँहमें जो मीठा स्वाद उसे आ रहा है वह तो उसे परोक्ष नहीं है, वह तो जैसे स्वाद देखते मनुष्यको आता है वैसा ही स्वाद अन्ध मनुष्यको भी आता है, इस स्वादकी जातिमें कोई फर्क नहीं है और स्वादका वेदन परोक्ष नहीं है। वैसे मति-श्रुतज्ञानी असंख्य आत्मप्रदेश आदिको केवलीप्रभुकी तरह

श्री नेमिनाथ जिन-स्तुति	भगवन् ऋषि ध्यान सु शुकूल किया, इन्धन चहुं कर्म जलाय दिया;

प्रत्यक्ष भले न देखे, इस अपेक्षासे उसे आत्मा परोक्ष है, परन्तु स्वानुभवमें आत्माके आनंदका जो अतीन्द्रिय स्वाद मति-श्रुतज्ञानीको चौथे गुणस्थानमें आता है उसे तो वह साक्षात् वेदता है; जैसा आनन्द प्रत्यक्षज्ञानी वेदता है वैसा ही आनंद स्वानुभवमें मति-श्रुतज्ञानी वेदता है। इनमें वेशी-कमी भले हो परन्तु आनन्दके वेदनकी जातिमें कोई फर्क नहीं, और उस आनन्दका वेदन भी परोक्ष नहीं है। अतः स्वानुभवको प्रत्यक्ष कहते हैं।

अथवा, प्रत्यक्ष कहनेका दूसरा प्रकार यह है कि स्वानुभवसे जिस आत्माको जाना वह प्रत्यक्ष जैसा ही स्पष्ट जाना है। प्रत्यक्ष जैसा हो उसे भी प्रत्यक्ष कहा जाता है–इस न्यायके अनुसार इस स्वानुभवको भी प्रत्यक्ष कहते है। क्योंकि स्वानुभवमें मति-श्रुतज्ञानने भी आत्माको प्रत्यक्षकी तरह यथार्थ जाना है। वह मति-श्रुतज्ञान भी प्रत्यक्ष जैसा ही (अर्थात् केवलज्ञान जैसा ही) जोशदार-निःसंदेह-यथार्थ है, अतः इसके स्वानुभवको प्रत्यक्ष कहें तो कोई दोष नहीं है। इस प्रकार आगमकी सामान्य शैलीके अनुसार इस मति-श्रुतको परोक्ष कहते है और अध्यात्मकी खास शैलीमें उसे प्रत्यक्ष भी कहा जाता है। आगम-अध्यात्म शास्त्रोंमें भिन्न-भिन्न विवक्षासे अनेक प्रकारके कथन आते हैं, इनकी विवक्षा समझकर, इनमें परस्पर विरोध न आवें और अपना हित हो इस प्रकार इनका आशय समझना चाहिये। किसी जगह एक बात पढ़ी हो वही सब जगह पकड़ रखें, और अन्य जगह अन्य विवक्षासे कोई दूसरा प्रकार आवे तब वहाँ यदि इसका आशय न समझें,–तो दोनोंका मेल बिठाना मुश्किल हो जाय। अतः किस जगह कौनसी विवक्षा है यह समझना चाहिये।

मनके अवलम्बनकी अपेक्षासे मति-श्रुतज्ञानको परोक्ष कहा है; परन्तु मनका अवलम्बन हो तब आत्माको जान ही न सके ऐसा नहीं है; क्योंकि इस ज्ञानमें स्वानुभवके समयमें बुद्धिपूर्वक मनका जोड़ान छूट गया है इतने अंशमें इसमें प्रत्यक्षपना है। जो सूक्ष्म-अबुद्धिपूर्वक विकल्प है उसमें मनका अवलम्बन है, परन्तु आत्माका जो स्वसंवेदन है उसमें तो उनका अवलम्बन छूट गया है। केवलज्ञान जैसा प्रत्यक्षपना इसमें भले न हो परन्तु स्वानुभव-प्रत्यक्षपना है। निर्विकल्प स्वानुभवको प्रत्यक्ष कहा तथा इसमें आनन्दकी खास विशेषता कही–ऐसे इसकी बहुत महिमा की। तो ऐसा स्वानुभव किस गुणस्थानमें होता होगा?–किसी बड़े-बड़े मुनिओंको ही ऐसा अनुभव होता होगा, या गृहस्थोंको भी होता होगा ? यह बात अब आगेके प्रश्नोत्तरसे स्पष्ट करते हैं। (क्रमशः) ✻

विकसित अम्बुजवत् नेत्र धरें,
हरिवंश-केतु, नहिं जरा धरें।१२१।

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन) (प्रवचन : ७)

मुक्तिमार्गका पथिक जैनी

बाह्य जैनी भी कैसा होता है ? इसका वर्णन चलता है। और समयसार गाथा ३१ आदिमें अन्तरंग जैनी कैसे होते हैं यह बात है। जिसने अपने आत्माके स्वभावके बलसे अपनी पूर्णदशारूप परमानन्दस्वरूप सर्वज्ञपद प्रकट कर लिया है, वीतराग जिनदेवको बाह्य लक्षणों द्वारा पहचान कर माननेवाला बाह्य जैनी है और जो सर्वज्ञ जैसे अपने अन्तरंगके वीतरागस्वरूपकी श्रद्धा करता है वह अन्तरंग जैनी है; अन्तरंग श्रद्धावाला जैनी मुक्तिमार्गका पथिक है।

प्रश्न—जो अन्तरंग स्वरूपको मानता है किन्तु बहिरङ्गमें देव-गुरुको नहीं मानता, वह कैसा कहलायेगा ?

उत्तर—बाह्यमें देव-गुरुको न माने और अन्तरंगकी श्रद्धा हो जाय ऐसा नहीं बन सकता। अपनेको अन्तरंग जैनी (सम्यग्दृष्टि) कहलाये और बाह्यमें वीतरागी देव-गुरुके प्रति विनय-भक्ति आदिमें न प्रवर्ते तो वह दम्भी है ऐसा समझना। उसका अन्तरंग जैनीपना भी झूठ ही है।

अपने अन्तरंग स्वरूपका भान करना सो अभ्यन्तर जैनत्व है, उस जैनत्वके प्रकट हुए बिना वीतरागता नहीं आ सकती और अंतरंग जैनत्व प्रकट होनेके साथ जबतक पूर्ण वीतरागता प्रकट नहीं होती तबतक देव-गुरु-धर्मकी भक्ति प्रभावना इत्यादिका शुभराग होता है। यह सर्वज्ञ भगवानका शासन है। एक समयमें तीन काल और तीन लोकको जाननेवाले सर्वज्ञदेव जागृत चैतन्यज्योति हैं और उनके द्वारा प्रकाशित यह मार्ग है, उसमें अन्यथा कुछ नहीं चल सकता। जो अंतरंग स्वरूपकी श्रद्धा करके अन्तरंग जैनी बनता है उनका तो कहना ही क्या है ? वे तो जिनेश्वरदेवके लघुनन्दन ही हो गये। अंतरंग जैनत्व अपूर्व वस्तु है; यहाँ तो बाह्य जैनी भी कब बना जा सकता है यह बात समझाते हैं। बाह्य जैन हुए बिना अन्तरंग जैन नहीं हुआ जा सकता। यदि कोई कुदेवादिको छोड़कर तन, मन, धनसे सच्चे देवादिकी भक्ति नहीं करता तो वह बाह्य जैन भी नहीं है। सच्चे देव, गुरु और धर्मका मिलना

निर्दोष विनय दम वृष कर्ता,
शुचि ज्ञान किरण जन हित कर्ता;

अनन्तकालमें भी दुर्लभ है; वे धर्मके निमित्त हैं। पहले सच्चे बाह्य यथार्थ निमित्तोंकी श्रद्धा भक्ति हुये बिना अन्तरंगके उपादान स्वरूपकी श्रद्धा भी नहीं हो सकती।

प्रश्न—आपने अपने एक प्रवचनमें कहा था कि देव-शास्त्र-गुरु किसीको समझा नहीं देते।

उत्तर—हाँ, यह ठीक है; किन्तु यह किसने कहा है कि वे निमित्त भी नहीं हैं? सत्को समझनेके लिए सच्चे देव, गुरु और शास्त्रका ही निमित्त होता है। किन्तु यहाँ यह नहीं भूल जाना चाहिए कि 'निमित्त परका कुछ नहीं करता' और 'सत्में सत् निमित्त आये बिना नहीं रहते,' यदि पहले सच्चे देव, शास्त्र और गुरुको पहचान कर उन्हें निमित्तके रूपमें स्वीकार न करे और कुदेवादिको माने उन्हें तो बाह्य जैनपना भी नहीं हो सकता; उसे वीतरागके प्रति रुचि भी उत्पन्न नहीं हुई है।

''हे नाथ ! हे देव ! तेरी भक्तिके आगे मुझे इन्द्रपद, कामधेनु गाय, चिन्तामणि रत्न, कल्पवृक्ष अथवा चक्रवर्तीका राज्य यह सब सड़े हुए तृणके समान मालूम होता है।'' ऐसे भावोंके साथ गणधर और इन्द्र भी अर्हन्तदेवकी भक्ति करते हैं। यद्यपि उन्हें आत्माका भान है किन्तु अभी पूर्णदशा प्रकट नहीं हुई, इसलिए उनके बीच बीचमें ऐसा शुभराग आ जाता है। वे अन्तरंगमें समझते हैं कि 'यह शुभराग है वह मेरा स्वरूप नहीं है, जब इस शुभरागको दूर करूँगा तब वीतरागता प्रकट होगी।' इसप्रकार देव, गुरु और धर्मके प्रति शुभराग हुए बिना नहीं रहता, किन्तु उस शुभरागसे धर्म नहीं होता। जिन्हें विचक्षण ज्ञान (केवलज्ञान) प्रकट हो चुका है ऐसे त्रिलोकीनाथ और उनके अनुयायीयोंको छोड़कर त्रिकालमें किसीने न तो सत् धर्मको कहा है और न कह सकेगा। जो ऐसे वीतरागदेवकी न तो श्रद्धा करते हैं और न ज्ञान करते हैं तथा जो अपनी क्रियाको भी नहीं सुधारते अर्थात् जो रागकी दिशाको नहीं बदलते वे व्यवहार जैनी भी नहीं हैं।

प्रश्न—यदि आप कहें तो हम दो-चार वस्तुका त्याग करदें, किन्तु हमें जैनमें तो शामिल रक्खो?

उत्तर—जो अर्हन्तदेव और निर्ग्रन्थ मुनि-गुरुको नहीं पहचानता और जिसे अन्तरंगसे उनके प्रति भक्तिका उल्लास जागृत नहीं होता तथा जो उनके लिए तन, मन, धन खर्च नहीं करता वह भले ही बाहरमें त्यागी जैसा हो तो भी उसको व्यवहारसे भी जैनत्व नहीं है; मिथ्यात्वके सेवनसे वह अपने निर्मल भावरूपी अनन्ती हरीको चबा जाता है; वह आत्मा

शीलोदधि नेमि अरिष्ट जिनं,
भव नाश भअे प्रभु मुक्त जिनं।१२२।

स्वयं हरा भरा आनन्दमूर्ति वीतरागस्वरूप है, इस वीतरागस्वरूपकी जो भक्ति नहीं करता, उसके आत्माके आनन्दकी हिंसा होती है, और यही आत्माके हरे भरे स्वरूपकी भावहिंसा है। इस भावहिंसाका फल चतुर्गति भ्रमण है; तुझे इस भावहिंसासे बचना हो तो वीतरागदेवको पहचान और उनके दिखाये आत्मस्वरूपको जान। अरे ! यदि सच्चे देव-गुरुको मानता हो तो यह देख कि तूने अपनी कमाईका चतुर्थांश, षष्ठम या दशमअंश भी देव-गुरु-धर्मकी प्रभावना इत्यादिके लिए निकाला है या नहीं ? जो अपने भावकी क्रियाको भी नहीं सुधारता अर्थात् अशुभ छोड़के शुभमें भी नहीं आता वह वीतरागका भक्त नहीं है।

ध्यान रहे कि यह बात मात्र पुरुषोंके लिए ही लागू होती है ऐसा नहीं है किन्तु स्त्रियोंके लिए भी एकसी लागू होती है। स्त्रीके लिए गहने बनवा दिये जाते हैं किन्तु उस पर उनका अधिकार है या नहीं ? स्त्रीको यदि कुछ दानादिमें खर्च करना हो तो वह खर्च कर सकती है या नहीं ? बहुत सी स्त्रियोंके पास धन तो होता है किन्तु वह उसे खर्च नहीं कर सकती, मरण तक ज्योंका त्यों पड़ा रहता है; तीव्र लोभी आदमी अपने जीते जी कुछ खर्च नहीं कर सकता।

कोई जीव, देव-गुरु-धर्मके लिए कुछ करनेकी बात आती है तब तो अनेक बहाने निकालता है लेकिन वह बंगला–मोटर, शादी इत्यादिके लिए हजारों रूपये खर्च करता है, वे कहाँसे लाता है ? जब धर्मकी बात आती है तब कहता है कि मेरे पास इतना धन खर्च करनेकी गुंजाईश नहीं है, लेकिन लड़केकी शादी इत्यादिके लिए बहुत लम्बा विचार करता है और उत्साहसे खर्च करता है; लेकिन क्या कभी वह उसीप्रकार देव-गुरु-धर्मके लिए भी विचार करता है ? उनकी महिमा प्रभावना इत्यादिके लिए कुछ करनेका भाव भी कभी होता है या मात्र लुखी बातें ही करते हो ? जिसे देव-शास्त्र-गुरुकी प्रभावना और भक्तिके लिए उल्लास नहीं होता वह वीतरागका भक्त नहीं है। जो वीतरागका भक्त होता है उसे जब देव-शास्त्र-गुरुकी प्रभावनादि कार्योमें तन, मन, धन लगानेका सुअवसर प्राप्त होता है तह वह उल्लाससे कूद पड़ता है और कहता है कि ''अहो, धन्य है यह सुअवसर, धन्य है यह प्रसंग, धन्य है देव-शास्त्र और गुरु। भला देव-शास्त्र-गुरुके कार्यसे बढ़कर और कौनसा कार्य हो सकता है ? मेरे हाथोंसे देव-गुरु-धर्मकी प्रभावना हुई, मेरा जीवन

तुम पादकमल युग निर्मल हैं,
पदतल-द्वय रक्त-कमल-दल है;

धन्य हो गया।'' इस प्रकार जो तन, मन, धनसे उल्लासपूर्वक देव-शास्त्र-गुरुकी भक्ति नहीं करता उसका जीवन व्यर्थ है।

कोई वीतरागी देव-गुरु-धर्मके लिये तन, मन, धन खर्च नहीं करता और अपने बचावके लिए कहता है कि ''भाई, वीतरागका मार्ग तो स्वयं वीतराग द्वारा ही सुशोभित हो रहा है, इसमें मेरा क्या चल सकता है? शासनका पुण्य अलौकिक है, उसीसे शासन सुशोभित हो रहा है।'' उसके उत्तरमें कहते हैं कि तेरे स्त्री पुत्रादि भी पुण्यसे 'सुशोभित' हो रहे हैं फिर उनके लिए क्यों मुफ्तमें परिश्रम करता है। वहाँ तो तू उल्लाससे सब कुछ करता है और पाप बांधता है और यहाँ पर कोरी बातें बनाता है। भले, शासन तो उसके पुण्यसे चल ही रहा है; किंतु तु अशुभ रागको छोड़कर शुभराग क्यो नहीं करता? यदि वीतराग देवको मानते हो तो अशुभरागकी दशाको बदलकर देव-शास्त्र-गुरुके उल्लासपूर्वक तन, मन, धन लगाओ। मात्र कोरी बातोंसे सूखी बातोंसे पाँच अज्ञानी आलसी आदमियोंके साथ सम्बन्ध रखनेके लिए प्रमादी बनकर, बाह्य जैनी बनना चाहते हो, किन्तु अन्तरंग भावोंके बिना यथार्थ फल नहीं मिलेगा और जब यह अवसर (मनुष्यदेह) चला जायगा, तब तू ही पश्चाताप करेगा।

पहले गृहीतमिथ्यात्वकी दशामें विपरीत मान्यताके कारण कुदेवादिमें तन, मन, धन लगाये रहते थे और जब सच्चे देव-गुरु-धर्मके लिए उससे अधिक खर्च नहीं करते, तब क्या यह माना जाय कि जैनमतमें आनेसे तुम्हारी शक्ति उल्टी कम हो गई है? अथवा कपटमात्रसे मात्र लोगोंको दिखानेके लिये जैनी हुए हो, या तुम्हें त्रिलोकीनाथ परमात्मा अर्हन्तदेवकी सत्यता और महत्ता प्रतिभासित नहीं हुई है? अथवा यों माना जाय कि तुम्हें देव-गुरु-धर्मकी भक्तिका कोई फल दिखाई नहीं देता। इतने प्रकार बता दिये हैं, इनमेंसे कहीं न कहीं तुम्हारा मन जरूर अटक रहा है, अन्यथा देव-गुरु-धर्मकी भक्ति और उनके प्रति बहुमान हुए बिना नहीं रह सकता। सच्चे देव, शास्त्र और गुरुकी भक्तिमें सत्के निमित्तोंका बहुमान है, उसमें उच्च शुभभावका फल महान है। सांसारिक पाप कार्योंका फल तो अशुभ है। सच्चे देव-गुरुकी भक्तिका शुभफल मिले बिना नहीं रहता।

मालूम होता है कि तुम्हें सर्वज्ञदेवका यथार्थ रहस्य ज्ञात नहीं हुआ है, अतएव

(शेष देखे पृष्ठ २० पर)

नख चन्द्र किरण मंडल छाया,
अति सुंदर शिखरांगुलि भाया।१२३।

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

❊ समाधि-वर्णन ❊

आधि–व्याधि–उपाधि रहित दशा वह समाधि है, कुटुम्ब–परिवार आदि परकी क्रिया वह उपाधि है, शरीरमें रोगादि हों वह व्याधि और मनमें संकल्प–विकल्पका होना वह आधि है। तीनोंसे रहित आत्मामें लीन होना वह समाधि है। आत्मा मन, वाणी और शरीरसे भिन्न है। शुभाशुभभावोंसे रहित अपना स्वरूप है—ऐसी स्वसन्मुख दृष्टि होने पर लीनता होना वह समाधि है, वही धर्म है। ऐसे स्वरूपको न समझे और बाह्यमें दौड़ादौड़ी करता रहे, लाखोंका दान करे, लोग स्वागत–सन्मानादि करें, उसमें आत्माका धर्म नहीं है। परपदार्थोंकी क्रिया होती है वह तो जड़का प्रवाह–द्रवण है और शुभाशुभभाव विकार वह विकारका द्रवण है, उसमें आत्माका द्रवण नहीं है। स्वभावका द्रवण हो वह धर्मदशा है।

सम्यग्ज्ञान होनेसे सुख होता है। सम्यक् अर्थात् सत्य और सत्य वही सुख है। मिथ्याज्ञान वह असत्य है और असत्य वह दुःखरूप है। सम्यग्ज्ञान होनेसे वस्तुकी महिमा आती है और आत्मामें आनन्द प्रकट होता है—ऐसे शुद्धस्वरूपी आत्माका ज्ञान वह सम्यग्ज्ञान है। ऐसा सम्यग्ज्ञान होने पर ही आत्माकी महिमा होती है और आत्माको जानते ही आनन्द प्राप्त होता है। मैं ज्ञायक हूँ, अखण्ड हूँ, अभेद हूँ—ऐसा जानना ही आनन्द है। ज्ञान ज्ञानको जाने वह आनन्द है। ज्ञान रागको तथा परको जाननेमें रुकता था वही दुःख था। ज्ञान ज्ञानको जानता है, ज्ञान दर्शनको जानता है, ज्ञान सर्व गुणोंको जानता है और अपनी पर्यायोंको भी जानता है। वह कितनी निर्मल है और कितनी मलिन है उसे भी जानता है। साधक दशामें एकदेश ज्ञान है, पूर्णज्ञान नहीं है, पूर्णज्ञान तो केवलदशामें होगा। अंतर्ज्ञान द्वारा अपने द्रव्यको तथा अनन्तगुणोंको जानने पर परमपद प्राप्त करता है। निचली दशामें आत्माको यथार्थ जानने पर परमपद जैसा अंशतः सुख प्रकट होता है। साधकदशामें प्रत्यक्ष नहीं जानता, इसलिए वहाँ ज्ञान परोक्ष है, परन्तु वेदन प्रत्यक्ष है। ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है, परन्तु प्रतीतिमें तो प्रत्यक्ष है। स्वरूपमें उपयोग जम गया हो ऐसी समाधि होने पर बाह्य

इन्द्रादि मुकुट मणि किरण फिरै,
तव चरण चूम्बकर पुण्य भरै;

परीषहादिका वेदन नहीं होता। सनत्कुमार चक्रवर्तीको कुष्ठ रोग था। तथा मुनिको कोई अग्निमें फेंक दे तो उस समय भी उनको आत्माका वेदन होता है, दुःखका वेदन नहीं होता, क्योंकि वहाँ निर्विकल्प अनुभव होता है। श्री समयसारके १०वें कलशमें कहा है कि— ज्ञान स्वरूप होने अर्थात् अनुभूति करनेका ही आगममें निधान अर्थात् आदेश है। भगवानने आत्माके अनुभवको ही धर्मकी विधि कहा है। सर्वज्ञकी वाणीमें ऐसा आदेश आया है कि तेरा आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, अखण्ड है—उसीके अनुभवका विधान है। शरीरकी या रागकी विधि करते–करते धर्म होता है ऐसा नहीं है। विधि–विधान तो आत्माकी दृष्टिपूर्वक अन्तर्लीनता करना वह एक ही है। पुण्य–पापका विकार वह विधि नहीं है। रागकी भूमिकामें हेयबुद्धिपूर्वक वे दया–दान–भक्ति–व्रतादिके शुभभाव आते अवश्य हैं परन्तु भगवानने उस धर्मकी सच्ची विधि नहीं कहा है। आत्माका अनुभव करना ही धर्म है, वही विधि और वही विधान है, उसीसे समाधि प्रकट होती है, असमाधि नहीं होती। स्वरूपका वेदन करनेको ही भगवानने विधान कहा है।

अज्ञानी शास्त्रके अर्थको नहीं समझता। शास्त्रमें तो निमित्तसे भी कथन किया होता है। आत्मा है तो उसकी पर्याय उससे होगी या परसे? परसे होगी–ऐसा माने वह निमित्तके कथनको नहीं समझता। एक मूर्ख परदेश गया था; उसके पिताने पत्र लिखा कि तेरी पत्नी कहती है कि मैं विधवा हो गई हूँ। वह पत्र पढ़कर उसने मान लिया कि मेरी स्त्री विधवा हो गई, परन्तु पत्रके आशयको नहीं समझा कि मेरे होते हुए मेरी स्त्री विधवा नहीं हो सकती। उसीप्रकार जो शास्त्रके कथनको नहीं समझे और मेरी पर्याय परसे होती है ऐसा माने वह आत्मा जीवित–विद्यमान पदार्थ है, उसकी पर्याय परसे नहीं हो सकती, इतनी भी खबर उसे नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि–परकी बात तो नहीं परन्तु आत्मामें जो शुभाशुभ भाव होते हैं वह भी धर्मका विधान नहीं है। ज्ञानी तो स्वसन्मुखतापूर्वक आत्माका अनुभव हो उसीको धर्मका विधान समझता है और वही समाधि है। (क्रमशः) ✻

● अनुभवकी विधिका वर्णन करते हुये आचार्यदेव कहते हैं कि जीव द्रव्य स्वयंके द्वारा शुद्ध स्वरूपका अनुभव करनेमें समर्थ है। रागकी मंदता थी या बहुत व्रत-तप आदि किये थे इसलिये आत्मज्ञान हुआ–ऐसा नहीं है। निजस्वरूपका ज्ञान नहीं था तबतक जो जीव अज्ञानवश विकारभावोंका वेदन और अनुभव करनेमें समर्थ था वह स्वयं ही स्वयंके द्वारा निजशुद्ध द्रव्यका अनुभव करनेमें समर्थ है, परंतु अज्ञानीको निजद्रव्यके सामर्थ्यका भान नहीं है। -पूज्य गुरुदेवश्री

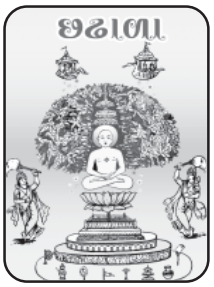

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(तीसरी ढाल, गाथा-४-५-६)

जीव तत्त्व और उसके भेदोंका वर्णन

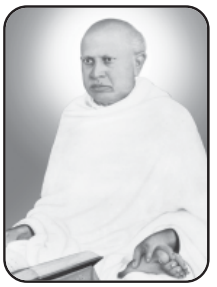

व्यवहार सम्यग्दर्शनमें जीवादि सात तत्त्वोंका श्रद्धान करनेका कहा उन तत्त्वोंका अब वर्णन करते है। उसमें प्रथम जीवतत्त्वका वर्णन तीन श्लोकमें करते है–

बहिरातम अंतर-आतम, परमातम, जीव त्रिधा है,
देह-जीवको एक गिनें बहिरातम तत्त्वमुधा है।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविधके अंतर-आतम ज्ञानी,
द्विविध संग बिन शुद्ध-उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ।।४।।

मध्यम अंतर-आतम हैं, जे देशव्रती अनगारी,
जघन कहे अविरत समदृष्टि, तीनों शिवमगचारी।
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घातिनिवारी,
श्री अरिहन्त सकल परमातम, लोकालोक निहारी ।।५।।

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल वर्जित सिद्ध महन्ता,
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनंता।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अंतर-आतम हूजै,
परमातमको ध्याय निरंतर, जो नित आनंद पूजै ।।६।।

निश्चयसम्यग्दर्शनमें तो एक ज्ञायकभावरूप अखंड जीव कि जो शुभाशुभभावरूप भी परिणमित नहीं होता ऐसे शुद्ध जीवकी अभेद श्रद्धा है, उसमें भेद होते नहीं है। यहाँ व्यवहारसम्यग्दर्शनके विषयभूत सात तत्त्वोंका कथन है इसलिये उसमें जीवकी अवस्थाके प्रकार बताये हैं। निश्चयसे सभी जीव ज्ञानस्वभावी एक समान है; अवस्था अपेक्षासे जीवोंके तीन प्रकार है—(१) बहिरात्मा; (२) अंतरात्मा; (३) परमात्मा। यह तीनों तो जीवकी पर्यायें हैं; और द्रव्यस्वभावसे सभी जीव परमात्मा स्वरूप परिपूर्ण है, उस स्वभावका भान करके उसमें एकाग्र होने पर पर्यायमेंसे बहिरात्मपना नाश होकर जीव स्वयं अंतरात्मा और

निज हितकारी पंडित मुनिगण,
मंत्रोच्चारी प्रणमैं भविगण।१२४।

परमात्मा होता है। परमात्मा होनेवाला जीव पुनः बहिरात्मा होता नहीं है। लेकिन बहिरात्मा जीव सम्यक्त्वादि द्वारा परमात्मा हो सकता है। अहा ! प्रत्येक जीवमें परमात्मा होनेका सामर्थ्य है, यह बात जैनशासन ही बतलाता है।

जगतमें भिन्नभिन्न अनंता जीव है; प्रत्येक जीवका लक्षण ज्ञानचेतना है। अवस्थामें वे जीव तीन प्रकाररूप परिणमते है, उसका स्वरूप यह तीन श्लोकमें दर्शाया है :

बहिरात्माका स्वरूप

स्वयंके अंतरंग ज्ञानस्वरूप भूलकर बाह्यमें शरीर और जीवको एक मानकर जो वर्तता है वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है; वह तत्त्वमें मूढ है। ऐसे बहिरात्मा जीव अनंत हैं; जगतके जीवोंका अधिकभाग मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। लेकिन बहिरात्मपना वह जीवका वास्तविक स्वरूप नहीं है, अर्थात् उसे छोड़कर जीव स्वयं अंतरात्मा तथा परमात्मा बन सकता है।

अंतरात्माका स्वरूप

देहसे भिन्न अंतरमें आत्मस्वरूपको जो जानता है वह अंतरात्मा है। नरकमें भी जो सम्यग्दृष्टि है वे अंतरात्मा है। मेंढक, हाथी, बंदर, सिंह आदि तिर्यंचोंमें भी जो जीव देहसे भिन्न आत्माको अंतरमें अनुभव करता है वे अंतरात्मा है। ऐसे अंतरात्मा असंख्यात है। चौथेसे लेकर बारहवें गुणस्थान तकके जीव अंतरात्मा है। उसमें जो द्विविध परिग्रहसे रहित है–अंतरमें मिथ्यात्वादि मोहसे रहित है और बाह्यमें वस्त्रादिसे रहित है, और शुद्धोपयोग द्वारा निजस्वरूपके ध्यानमें एकाग्र है ऐसे मुनिवर वे उत्तम अंतरात्मा है, अर्थात् सातवें गुणस्थानसे बारहवें गुणस्थान तकके जीव उत्तम अंतरात्मा है; अंतरमें आत्माके अनुभव सहित जो देशव्रती–श्रावक या महाव्रती-मुनि है वे मध्यम-अंतरात्मा है, अर्थात् कि पाँचवें और छठवें गुणस्थानवर्ती जीव मध्यम-अंतरात्मा है; और अविरत-सम्यग्दृष्टि अर्थात् जिसे व्रतादि न होने पर भी अंतरमें देहसे भिन्न शुद्ध आत्माके अनुभवरूप सम्यग्दर्शन हुआ है वे जीव जघन्य-अंतरात्मा है। इस प्रकार उत्तम-मध्यम और जघन्य ऐसे तीन प्रकारके अंतरात्मा जानना। चौथेसे बारहवें गुणस्थान तकके ये सभी अंतरात्मा जीव आत्माको जाननेवाले है और मोक्षमार्गमें चलनेवाले है। बारह अंगको जाननेवाले गणधर भगवान और एक छोटा सम्यग्दृष्टि

द्युतिमय रविसम रथचक्र किरण,
करती व्यापक जिस अंग धरन;

मैंढक–यह दोनों अंतरात्माएँ हैं, दोनों 'शिवमगचारी' है–मोक्षमार्गी है। देखो, चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत-सम्यग्दृष्टि गृहस्थको भी मोक्षमार्गी कहा है। समंतभद्रस्वामीने भी कहा है कि–'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थ निर्मोहो' (रत्नकरंडश्रावकाचार)।

परमात्माका स्वरूप

शुद्धात्माके ध्यानरूप शुद्धोपयोग द्वारा घातीकर्मोंको दूर करके, केवलज्ञानरूप परमपद जिन्होंने प्रकट किया है वे परमात्मा है, वे लोकालोकको प्रत्यक्ष जाननेवाले है। उन परमात्माके दो प्रकार है : अरिहंत परमात्मा और सिद्ध परमात्मा। अरिहंत परमात्मा शरीर सहित होनेसे उन्हें स-कल परमात्मा कहा जाता है; ऐसे लाखों अरिहंत भगवंतों विदेहक्षेत्रमें हालमें विचरण कर रहे है, और सदा होते रहते हैं। सिद्ध परमात्माको शरीर होता नहीं इसलिये उन्हें नि-कल परमात्मा कहा जाता है, उनको ज्ञानशरीर है, वे आठ कर्मसे रहित है। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानमें विराजमान जीव अरिहंत परमात्मा है; और गुणस्थानसे पार, देहातीत सिद्ध भगवंतों है। सिद्ध-परमात्मा अर्थात् चार गतिसे मुक्त जीव, वे अनंता हैं। अरिहंत और सिद्धपरमात्मा आत्माके अनंत सुखका अनुभव करते हैं।

—ऐसे तीन प्रकारमेंसे बहिरात्मपनेको हेयरूप जानकर त्याग करना; अंतरमें देहसे भिन्न शुद्ध परमात्मस्वरूपको पहिचानकर अंतरात्मा होना और निरंतर उसके ही ध्यान द्वारा परमात्मा होकर नित्य अनंत आनंदका अनुभव करना। प्रत्येक जीवमें ऐसे परमात्मा होनेका सामर्थ्य है। कोई कहे कि हम गाँवमें रहते है, व्यापार-धंधा-मजदूरीमें जीवन व्यतीत करते है, और यह परमात्मा होनेकी इतनी बड़ी बात आप समझा रहे हो !

तो कोई कहे कि–हां भाई ! तू गाँवमें नहीं रहता है, तू तो तेरे अनंतगुणके विशाल वैभवमें रहा है। दुःखसे छूटनेके लिये आत्माकी कदर करके जो समझना चाहते है वे प्रत्येकको समझमें आये ऐसी यह बात है। तेरे स्वरूपमें जो है उसे ही हम बतला रहे है, उससे विशेष कुछ भी नहीं कहते है। बापु ! जीवनमें यह बात लक्षमें लेने जैसी है, शेष सभी व्यर्थ है, उसमें आत्माका किंचित्मात्र हित नहीं है। पैसे कमानेके लिये मजदूरीमें जीवन व्यतीत करता है लेकिन यह करोड़ रुपया या बंगला-मोटरमें कहीं भी लेशमात्र सुख नहीं है। अरे ! स्वर्गमें सुख नहीं वहाँ मनुष्यलोकके वैभवकी क्या बात ? सुख तो आत्माके

है	नील	जलद	सम	तन	नीलं,
है	केतु	गरुड	जिस	कृष्ण	हलं ।१२५।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमें ही है। शेष बाह्य कोई भी पदार्थके लक्षसे तो आकुलता और दुःख ही है।

भाई ! विचार तो कर कि–रुपिया, मकान, मोटर आदि पदार्थों तो जीवतत्त्व है ?– कि अजीव ? यह तो अजीव है। तो क्या अजीवमें कदापि सुख होता है ? नहीं है। उसमें सुख कदापि नहीं है, तो तुझे कहाँसे देगा ? इसलिये अजीवमें-परमें सुखबुद्धि छोड़ दे।

अब, उस अजीवकी ओरके तेरे झुकावका भाव (–पश्चात् वह अशुभ हो या शुभ) उसमें भी आकुलता और दुःख ही है, उसमें कोई चैतन्यका वेदन तो नहीं है –इसलिये परलक्षी शुभाशुभभावोंमेंसे भी सुखबुद्धि छोड़ दे।

सुखसे परिपूर्ण तेरा आत्मस्वभाव, उसमें उपयोग लगानेसे ही स्वलक्ष्यसे परम आनंदका अनुभव होता है।

देखो, सात तत्त्व जाननेमें यह बात आ जाती है—

ज्ञान और आनंद जिसमें है वह जीवतत्त्व;

इसलिये सन्मुखतासे आनंद अनुभवमें आये–उसमें संवर-निर्जरा-मोक्ष आ गये।

ज्ञान और सुख जिसमें नहीं है इसलिये अजीवतत्त्व;

उसकी सन्मुखतासे आकुलता अनुभवमें आती है–उसमें पुण्य-पाप-आस्रव और बंध आ जाते है।

इस प्रकार तत्त्वोंका पृथक्करण करके समझे तो मोक्षमार्गका यथार्थ निर्णय हुए बिना रहेगा नहीं। गागरमें सागरकी भांति इस छहढाला में छोटेसे ग्रंथमें कई शास्त्रोंका सार भर दिया है; पंडितजीने पूर्वाचार्योंके उपदेश अनुसार कथन किया है। (क्रमशः)

(पृष्ठ १४ का शेष भाग) (मुक्तिका मार्ग)

उल्लासपूर्वक भक्ति इत्यादिमें तन, मन, धन नहीं लगाते। यदि तुम्हें सर्वज्ञदेवकी वास्तविक सच्चाई प्रतिभासित हो गई होती तो तुम्हें उस ओर स्वयं उत्साह क्यों नहीं होता ? ''अहो हमारा अवतार धन्य है कि हमें ऐसे सर्वोत्कृष्ट देव-गुरु-धर्मकी भक्ति-प्रभावनाका प्रसंग प्राप्त हुआ, यह तो हमारा ही कार्य है, धन्य, धन्य। हमारा यह धन्य भाग्य है कि हमारे हाथोंमें यह कार्य आया है।'' इसप्रकार तुम स्वयं उत्साहरूप प्रवृत्ति क्यों नहीं करते ? यदि देव-गुरुके प्रति सच्ची प्रीति उत्पन्न हो गई हो तो उस कार्यमें उत्साहपूर्वक तन, मन, धन, काल और ज्ञान इत्यादि लगाना चाहिये। (क्रमशः)✻

दुःखके कारणरूप चार प्रकारकी इच्छाएँ और उसको टालनेका उपाय

दुःखका लक्षण आकुलता है और आकुलता इच्छा होने पर होती है। स्वयंके निराकुल आत्मस्वरूपको जाने बिना चार प्रकारकी इच्छा जीवको होती रहती है—

(१) परविषयोंको ग्रहण करनेकी इच्छा होती है अर्थात् उसको देखनेकी-जाननेकी इच्छा है। लेकिन स्वभावको जानने-देखनेकी भावना करता नहीं है। वर्ण देखनेकी, राग सुननेकी तथा अव्यक्त पदार्थोंको देखनेकी इच्छा होती रहती है और जब तक उसे देखे-जाने नहीं तब तक अति आकुलित रहता है। स्वयंके आत्मस्वरूपको ही ज्ञानका विषय करके उसे ही जाननेके बदले परवस्तुको जानने-देखनेकी इच्छा करता है–उसका नाम विषय है।

(२) स्वयंके शांत चैतन्यस्वरूपमें क्रोधादि नहीं है, उस स्वरूपका अनुभव किया नहीं अर्थात् परलक्षसे क्रोधादि, मान आदि होने पर दूसरेको नीचा दिखानेकी, किसीका अहित करनेकी, परवस्तु प्राप्त करनेकी आदि इच्छाएँ होती रहती है और जब तक ऐसा कार्य न हो तब तक वह अति आकुलित रहा करता है, उसको कषाय कहते है।

(३) स्वयंके असंयोगी स्वभावका लक्ष किया नहीं अर्थात् संयोग उपर ही लक्ष गया वहाँ पूर्वके पापके कारणसे आये रोग, क्षुधा आदि प्रतिकूल संयोंगोको दुःखका कारण मानकर उसे दूर करनेकी इच्छा करता है और उसले लिये आकुल-व्याकुल होता है। इस इच्छाका नाम पापका उदय है।

(४) स्वयंके निराकुल निर्विकार स्वभावका अनुभवसे च्युत होकर, जिस संयोगको अनुकूल माने और उसे एक साथ भोग लेनेकी इच्छा करता है इस इच्छाका नाम पुण्यका उदय है, क्योंकि उसका लक्ष वर्तमानमें पुण्यके फलके प्रति है। पुण्यफल भोगनेकी जो इच्छा है वह तो पाप ही है।

यदि स्वयंके स्वरूपके अनुभवमें एकाग्र हो तो केवलज्ञान होने पर तीन काल तीन लोकके समस्त पदार्थोंका ग्रहण ज्ञानमें एक साथ होता है लेकिन अज्ञानी जीव स्वयंके संयोग रहित स्वभावको भूलकर संयोगको भोगना चाहते है। किन्तु पुण्यके फलरूप सर्व सामग्रीओंको एक साथ लक्षमें ले सकता नहीं है। एक समयमें अल्प पदार्थको लक्षमें ले सकता है, इसलिये नये नये पदार्थोंको जाननेकी, प्राप्तिकी और भोगनेकी इच्छासे आकुल-व्याकुल होता ही रहता है, एक समयमात्र भी निराकुल रहता नहीं है। जब कुछ मंद कषाय हो तब अज्ञानी जीव स्वयंको सुखी मानता है, लेकिन उसे अपने रागरहित स्वरूपका अनुभव नहीं है और परपदार्थोंको भोगनेकी आकुलता है इसलिये वह निरंतर दुःखी ही है। (शेष देखे पृष्ठ २९ पर)

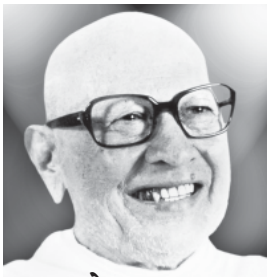

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–अपनी आत्माको जाननेसे ही सम्यग्दर्शन होता है तो फिर अरहन्तके द्रव्य-गुण-पर्यायको जाननेकी क्या आवश्यकता है?

उत्तर :–अरहन्तके द्रव्य-गुण-पर्यायको जानना आवश्यक है। अरहन्तकी पूर्ण पर्यायको जानने पर ही, वैसी पर्याय अपनेमें प्रकट नहीं हुई है, इसलिये उसे स्वद्रव्यकी तरफ लक्षित करने पर दृष्टि द्रव्यके ऊपर जाती है और सर्वज्ञ-स्वभावकी प्रतीति होती है। इसलिये अरहन्तके द्रव्य-गुण-पर्यायको जानने पर सम्यग्दर्शन हुआ—ऐसा कहा जाता है।

प्रश्न :–शुद्धस्वरूपका इतना विशाल स्तंभ दिखलाई क्यों नहीं पड़ता?

उत्तर :–दृष्टि बाहर ही बाहर भ्रमावे, उसको कैसे दिखाई पड़े? पुण्यके भावमें बड़प्पन देखा करता है, परन्तु अन्दर जो विशाल महान प्रभु पड़ा है उसे देखनेका प्रयत्न नहीं करता। यदि उसे देखनेका प्रयत्न करे तो अवश्य दिखाई पड़े।

प्रश्न :–जिनबिम्ब-दर्शनसे निधत्ति और निकांचित कर्मका भी नाश होता है और सम्यग्दर्शन प्रकट होता है–ऐसा श्री धवलग्रन्थमें वर्णन आता है। तो क्या परद्रव्यके लक्षसे सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है?

उत्तर :–श्री धवलग्रन्थमें जो ऐसा पाठ आता है उसका अभिप्राय यह है कि जिनबिम्बस्वरूप निज अंतरात्मा सक्रिय चैतन्यबिम्ब है, उसके ऊपर लक्ष और दृष्टि जानेसे सम्यग्दर्शन होता है और निधति व निकांचित कर्म टलते हैं, तब जिनबिम्ब-दर्शनसे सम्यग्दर्शन हुआ और कर्म टला—ऐसा उपचारसे कथन किया जाता है। चूँकि पहले जिनबिम्बके ऊपर लक्ष था, इसलिए उसके ऊपर उपचारका आरोप किया जाता है। सम्यग्दर्शन तो स्वके लक्षसे ही होता है, परके लक्षसे तो तीन कालमें हो सकता नहीं—ऐसी वस्तुस्थिति है और वही स्वीकार्य है।

प्रश्न :–मिथ्यात्वका नाश स्वसन्मुख होनेसे ही होता है या कोई और दूसरा उपाय भी है?

उत्तर :–स्वाश्रयसे ही मिथ्यात्वका नाश होता है, यही एक मात्र उपाय है। इसके अतिरिक्त दूसरा उपाय प्रवचनसार गाथा ८६में बताया है कि स्वलक्षसे शास्त्राभ्यास करना

दोनों भ्राता प्रभु-भक्ति-मुदित,
वृषविनय-रसिक जननाथ उदित;

उपायान्तर अर्थात् दूसरा उपाय है, इससे मोहका क्षय होता है।

प्रश्न :–सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका कारण क्या है ?

उत्तर :–सम्यग्दर्शनकी पर्याय प्रकट हुई है वह रागकी मंदताके कारण प्रगट हुई है–ऐसा तो है ही नहीं, किन्तु सूक्ष्मतासे देखें तो द्रव्य-गुणके कारण सम्यग्दर्शन हुआ है—ऐसा भी नहीं है। सम्यग्दर्शनकी पर्यायका लक्ष और ध्येय व आलम्बन यद्यपि द्रव्य है, तथापि पर्याय अपने ही षट्कारकसे स्वतंत्र परिणमित हुई है। जिस समय जो पर्याय होनेवाली है उसको निमित्तादिका आलम्बन तो है नहीं, वह द्रव्यके कारण उत्पन्न हुई है—ऐसा भी नहीं है। भाई ! अन्तरका रहस्य कच्चे पारेकी तरह बहुत गम्भीर है, पचा सके तो मोक्ष होता है।

(पृष्ठ ६ का शेष भाग) (प्रवचनसार)

समयमें परिपूर्ण व्यक्तदशा प्रकट हुई ऐसी केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्यकी परिपूर्ण पर्यायों सहित अर्हंतका स्वरूप है ऐसा ही आत्माका स्वरूप है क्योंकि दोनोंमें निश्चयसे कोई अंतर नहीं है। पुनः अंतिम तापसे कसोटी करके निकला हुआ सोलह आना शुद्ध सुवर्ण है। वैसा ही अरिहंतका स्वरूप सर्व प्रकारसे स्पष्ट है इसलिये अर्हंतका ज्ञान होने पर सभी आत्माका ज्ञान होता है। स्वयंके आत्माका तथा पर आत्माका, पुण्य-पापमें रुके ऐसा अथवा ज्ञान, दर्शनकी हीनदशावाला स्वरूप ही नहीं है। लेकिन परिपूर्ण दशा प्राप्त करे ऐसा स्वरूप है–ऐसा निश्चित होता है। अशुद्ध १२का केरेट सुवर्ण कोई ध्यानमें लेता नहीं है, १६ केरेटको ध्यानमें लेते है वैसे सभी जीवोंका स्वरूप निरपेक्ष परिपूर्ण है–ऐसा निश्चित होता है। (क्रमशः)

(पृष्ठ ८ का शेष भाग) (इष्टोपदेश)

विषयमें राग आता है तो प्रायश्चित्त करता है कि अरे ! मैं यह कहाँ खो गया ! यह मेरा स्वरूप नहीं है। मेरा स्वरूप-घरमेंसे बाहर निकलकर मैं यहाँ कहाँ आ गया ? शास्त्रमें तो यहाँ तक कहा है कि 'शास्त्रमें जानेवाली बुद्धि व्यभिचारिणी है' वह चाहे शुभभाव है लेकिन स्वरूपसे बाह्य है इसलिये आदरणीय नहीं है। इसलिये धर्मीको बाह्य कोई भी विषयमें राग हो जाय तो पश्चाताप होता है, दुःख होता है इसलिये वापिस मुड़कर पुनः स्वरूपमें ठहरनेका प्रयत्न करता है। ऐसा, उसे अंतरमें धर्मकी वृद्धि होती है। (क्रमशः) ✻

सहबंधु नेमिजिन-सभा गअे,
युग चरणकमल वह नमत भअे ।१२६।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *शास्त्र-स्वाध्याय एवं विचार करते हुए भेदके मार्गपर चले जाते हैं; अनादिकी आदत है न ?*

समाधान :—भेदके मार्गपर चले जाते हो तो बारम्बार लक्ष्य अपनी ओर करते रहना। जबतक अंतरमें लीन नहीं हुआ, अंतर्दृष्टि नहीं हुई तबतक विकल्प कहीं न कहीं तो फिरा करते हैं; बाह्यमें कहीं खड़ा तो रहता है; परन्तु श्रद्धा और रुचि तो यही रखनी कि ज्ञायकमें सर्वस्व है, उन सबमें रुकने जैसा नहीं है। ज्ञायकमें नहीं रहा जाता इसलिये (विकल्प) आये बिना नहीं रहते, बीचमें आते हैं, परन्तु श्रद्धा तो ज्ञायककी ही रखनी कि निर्विकल्प शुद्धात्मतत्त्व ही मैं हूँ।

प्रश्न :— *मुझमें सब कुछ है, किन्तु कौन जाने क्यों विश्वास नहीं आता ! बाह्यमें जवाहिरात आदिका विश्वास आता है !*

समाधान :—बाहरका तो सब दिखता है और यह दिखाई नहीं देता इसलिये विश्वास नहीं आता। किन्तु अपनेमें सब कुछ है। गुरुदेव कहते हैं और स्वयं भी विचार करके निश्चय करे कि ज्ञायकमें ही सब भरा है। गुरुदेव कहते थे कि जैसे छोटी पीपरको घिसते–घिसते उसमेंसे तीखापन प्रकट होता है; वैसे ही 'ज्ञायक हूँ–ज्ञायक हूँ, उसीमें सब भरा हुआ है और उसमेंसे स्वभाव प्रकट होता है' ऐसे निश्चय करना।

जिसप्रकार दहीको बारंबार बिलोया करे तो मक्खन पृथक् हो जाता है, उसी प्रकार बारम्बार भेदज्ञान करनेसे—बारम्बार 'मैं भिन्न हूँ, भिन्न हूँ'—ऐसे ज्ञानमें अभ्यास करे तो पृथक् है वह प्रकटरूपसे पृथक् हो जाता है।

प्रश्न :— *प्रयत्न करनेपर भी परकी रुचि नहीं छूटती, तो कृपया बतलाईये कि परकी रुचि छूटकर आत्माकी रुचि कैसे हो ?*

समाधान :—परकी रुचि तोड़ते–तोड़ते उसे पसीना आ जाता है। ऊपरी रुचि होती है कि आत्माका ही करने जैसा है, परन्तु एकत्वबुद्धि तोड़नेमें मुश्किल पड़ती है; अनन्तकालका अभ्यास है; इसलिये प्रयास कर–करके थक जाता है, खेद होता है; करनेका

भुवि काहि ककुद गिरनार अचल,
विद्याधरणी सेवित स्वशिखर;

तो यही है परन्तु पुरुषार्थकी कमीके कारण उसका विश्वास डगमगा जाता है। स्वयं है तो जुदा, परन्तु मोटे रस्सेकी भाँति एकत्व कर रखा है। स्वयं अनन्तकाल परके साथ एकत्वपनेके अभ्यासमें रहा है; परन्तु अब उस अनन्तकालके सामने भेदज्ञानका अभ्यास करनेपर सुलझनेमें अनन्तकाल नहीं लगता। धीरे–धीरे अभ्यास करे तो थोड़ा अधिक समय लगता है तथा उग्र अभ्यास करे तो (ज्यादासे ज्यादा) छह महीने लगते हैं। अंतरमें भले ही आत्माकी रुचि हो, परन्तु एकत्वबुद्धि तोड़ते–तोड़ते उसे मुश्किल पड़ती है और वह बाहर चला जाता है।

अपने और परके लक्षणको पहिचानकर यह द्रव्य–गुण–पर्याय मेरे हैं और यह पुद्गलके हैं—इसप्रकार बराबर भेदज्ञान करनेपर, सूक्ष्म संधिस्थानको देख, प्रज्ञाछैनी चारों ओर घूम जाती है जिससे किसी जगह संधि नहीं रहती, बराबर दो विभाग हो जाते हैं। सूक्ष्मतासे लें तो गुणभेद, पर्यायभेद या किसी भी प्रकारके रागमिश्रितभाव जो–जो भाव आयें उन सबसे पृथक् हो जाता है। ज्ञानमें सब जानता है, परन्तु जहाँ–जहाँ एकत्वबुद्धि हो वहाँ सबसे भिन्न पड़ जाता है। शुभभाव कि जहाँ अपनेको बहुत रस लगता है वैसे भाव, गुण–पर्यायके भेद आदि जो–जो सूक्ष्मभाव आते हों उन सबमें चारों ओर फिरकर प्रज्ञाछैनी स्पष्ट दो भाग कर देती है। एक चैतन्यका भाग और दूसरा विभावका भाग—ऐसे दो भाग कर देती है।

प्रश्न :— *श्री 'समयसार'की १७वीं तथा १८वीं गाथामें क्या ऐसा बतलाया है कि भगवान् आत्मा सबको अनुभवमें आता होनेपर भी अपनेको आत्मज्ञानका उदय नहीं होता उसमें दृष्टिकी भूल है?*

समाधान :—हाँ, दृष्टिकी भूल बतलानी है कि उसकी दृष्टि बाहर जाती है। जैसे कोई आदमी दूसरोंकी गिनती कर रहा हो कि—यह है, यह है, परन्तु स्वयं अपनेको गिनना भूल जाता है; उसीप्रकार स्वयं सब कुछ बाह्यमें देख रहा है, परन्तु 'मैं चैतन्यद्रव्य हूँ' ऐसे अपनेको ही भूल रहा है। उसे अपने अस्तित्वकी तथा आनन्दकी अनुभूति नहीं है। स्वयं अनुभूतिस्वरूप होनेपर भी आनन्दकी अनुभूति नहीं है। ज्ञान ऐसा असाधारण लक्षण है कि जिस लक्षण द्वारा स्वयं अपनेको पहिचान सकता है। उस ज्ञायकताका नाश नहीं हुआ। ज्ञान ज्ञानरूपसे परिणमित हो रहा है परन्तु स्वयं ज्ञायकतारूप नहीं हुआ इसलिये उसकी ओर दृष्टि करे, उसका ज्ञान करे, आचरण करे, तो उसे आनन्दकी अनुभूति प्रकट हो।

हैं मेघ पटल छाए जिस तट,
तव चिह्न उकेरे वज्र-मुकुट ।१२७।

बाल विभाग

वालिरिवल्यकी कथा

वनवासके समय अनेक नगर-वन भ्रमण करते हुए श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी नलकुंवर नामके नगरमें आकर रहे। जल लेने लक्ष्मणजी सरोवर पर गये वहाँ एक राजपुत्री राजकुमारका वेष लेकर आयी थी उसने रामचंद्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजीको अपने शामियानामें बुलाया और अपना वास्तविक रूप कहकर रोते हुए अपना और अपने पिताको किसने बंदी बनाया आदि सर्व वृत्तांत सुनाया। उससे आगे...

श्री रामचंद्रजीने उसे मधुर वचनसे धैर्य दिया और सीताने उसे गोदमें लिया, उसके मुखको धोया। लक्ष्मणने कहा हे सुंदरी ! तू शोकको तज दे। तू अभी पुरुषके वेशमें राज्य कर। कुछ ही दिनोंमें म्लेच्छको बंदी और तेरे पिताकी मुक्ति समझ ऐसा कहकर उसे आनंदित किया। उनके वचनोंसे कन्याको लगा कि अब पिताजीकी मुक्ति ही है। श्री राम-लक्ष्मण देव समान वहाँ पर अति आदरपूर्वक रहे। फिर रात्रिको सीता सहित उपवनमेंसे गुप्तरूपसे चले गये। प्रातः होनेपर कन्या जागी और उनको न देखकर विलाप करती हुई मनको रोककर हाथी पर बैठकर पुरुषके वेशमें नगरमें आयी। कल्याणमालाके विनयसे जिनका चित्त हर लिया गया था ऐसे वे राम-लक्ष्मण अनुक्रमसे मेकला नामक नदीके पास पहुँचे। नदीको पार करके क्रीड़ा करते हुए अनेकदेशोंको पार करते हुए विंध्याटवीमें आये। रास्तेमें एक ग्वालिनने कहा कि यह भयानक अटवी है आपके जानेयोग्य नहीं है। उनकी बात न मानते हुए उसी रास्तेसे चलते आगे गये। लतासे आच्छादित शालवृक्षादिकसे शोभित है। कई प्रकारके सुगंधित पुष्पोंसे भरी है तो कहीं पर दावानलसे जले वृक्षोंकी शोभारहित भी है, जैसे कुपुत्रोंसे कलंकित गोत्र नहीं शोभता।

फिर सीताजी कहने लगी कि कांटेवाले वृक्ष पर बायी ओर कौआ बैठा है वह कलहकी सूचना करता है, और दूसरा कौआ क्षीरवृक्ष पर बैठा है वह जीतको दर्शाता है। इसलिए एक मुहूर्त ठहरो, दूसरे मुहूर्तमें चलेंगे, आगे कलहके पश्चात् जीत है, मेरे मनमें ऐसा आ रहा है। तभी दोनों भाई थोड़ीदेर रुके, फिर चले। आगे म्लेच्छोंकी सेना दिखाई दी तब दोनों भाई निर्भय होकर धनुषबाण लेकर म्लेच्छोंकी सेना पर चढ़ाई कर दी। वह सेना अलग-अलग दिशामें भाग गई। स्वयंकी सेनाको भागती हुई देखकर दूसरे म्लेच्छोंकी सेना शस्त्र धारण करके, बख्तर पहिनकर आयी लेकिन उसे भी रमतमात्रमें जीत लिया। तभी वे म्लेच्छों धनुष-बाण फेंककर, पुकार करते हुए अपने स्वामीके पास जाकर सभी वृत्तांत कहने लगे। तब वे सभी म्लेच्छ अति क्रोधित होकर धनुष-बाण लेकर विशाल क्रूर सेना सहित आये। शस्त्रोंके साथ वह काकोनद जातिके म्लेच्छ पृथ्वी पर प्रसिद्ध, मांसभक्षी राजाओंसे भी दुर्जय, काली घटा समान आ पहुँचे।

तभी लक्ष्मणने धनुषका टंकार किया, सभी म्लेच्छों डर गये। वनकी दशों दिशाओंमें आंधी समान बिखर गये और अत्यंत भयभीत म्लेच्छोंका अधिपति रथमेंसे उतरकर, हाथ जोड़कर प्रणाम करके पैरमें गिर गया और अपना पूर्ण वृत्तांत दोनों भाईयोंको कहने लगा।

हे प्रभो! कौशाम्बी नामकी एक नगरी है। वहाँ विश्वानल नामका अग्निहोत्री ब्राह्मण रहेता था। उसकी प्रतिसंध्या नामकी स्त्री थी। मैं उसका रौद्रभूत नामक पुत्र हूँ। मैं जुएमें प्रणीण और बाल्यावस्थासे ही क्रूर कर्म करता था। एक दिन चोरी करते हुए पकड़ा गया और मुझे शूली पर चढ़ानेकी तैयारी हो रही थी तब एक दयावान पुरुषने मुझे मुक्त कराया और कंपित होता हुआ मैं देश छोड़कर यहाँ आया हूँ। यहाँ कर्मानुयोगसे काकोनद जातिके म्लेच्छोंका अधिपति हुआ। मैं महाभ्रष्ट, पशुसमान व्रतक्रियाएँ करता रहता हूँ। अभीतक बड़ी बड़ी सेनानायक, बड़े राजाओं भी मेरे सामने युद्ध करने समर्थ नहीं थे, लेकिन आपके दर्शनमात्रसे ही मैं वशीभूत हुआ हूँ। धन्यभाग्य मेरे कि आप समान पुरुषोत्तमको देखा। अब मुझे जैसी आज्ञा करोगे वैसा मैं करूंगा। मैं आपका दास हूँ। आपके चरणारविंदकी चाकरी शिर पर धारण करता हूँ। यह विंध्याचल पर्वत और स्थान भंडारोंसे भरपूर है। बहुत धनसे पूर्ण है। आप यहाँ राज्य किजीये, मैं आपका दास हूँ ऐसा कहकर म्लेच्छ मूर्छित होकर उनके चरणों जा गिरा।

जैसे वृक्ष निर्मूल होकर गिर जाता है वैसे उसे विह्वल देखकर श्री रामचंद्र पूर्ण कल्पवृक्ष समान कहने लगे। खड़ा हो जा, डर मत, वालिखिल्यको मुक्त कर, तुरंत उसे हाजिर कर और उनका आज्ञाकारी मंत्री होकर रहे, म्लेच्छोंकी क्रियाएँ छोड़ दे, पापकार्यसे निवृत्त हो जा। देशकी रक्षा कर, ऐसा करनेमें तेरी कुशलता है। तब उसने कहा कि हे प्रभो! ऐसा ही करूँगा। इस प्रकार विनति करके और महारथके पुत्र वालिखल्यको मुक्त किया। अति विनयसे तैलादि मर्दन करके, स्नान, भोजन कराके, आभूषण पहिनाकर, रथमें बिठाकर, श्री रामचंद्रके समीपमें लानेको तैयार हुआ। तब वालिखिल्यको बहुत आश्चर्य हुआ और विचार करने लगा कि कहाँ यह म्लेच्छ, कुकर्मी, अत्यंत निर्दयी महाशत्रु और कहाँ अभीका उसका विनय! ऐसा लगता है कि आज मुझे किसीको भेंट दे देगा, अब मेरा जीवन रहेगा नहीं। ऐसी चिंतासे वालिखिल्य चला। सामने राम-लक्ष्मणको देखकर अत्यंत हर्षित हुआ। रथमेंसे ऊतरकर नमस्कार किया और कहने लगा कि है नाथ! मेरे पुण्यके योगसे आप पधारे और मुझे बंधनसे मुक्त करवाया। आप इन्द्र समान मनुष्य हो, पुरुषोत्तम पुरुष हो। रामने आज्ञा कि तू तेरे स्थानमें जा, कुटुम्बसे मिल, फिर वालिखिल्य रामको प्रणाम करके रौद्रभूतके साथ अपने नगरमें गया। श्री राम वालिखिल्यको मुक्त कराके रौद्रभूतको दास बनाकर वहाँसे आगे चले। वालिखिल्यको आता हुआ देखकर कल्याणमाला महान

(शेष देखे पृष्ठ ३३ पर)

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

दिये गये विकल्पमेंसे सही विकल्प पसंद करके रिक्त स्थानकी पूर्ति कीजिये।

(१) सम्यग्दर्शनके आठ अंगमें ..... अंग आता है।
(प्रवचनभक्ति, अहिंसा, वात्सल्य)

(२) पाँच पांडवमेंसे सहदेव-नकुल अभी ..... में हैं।
(१६ स्वर्ग, मोक्ष, सर्वार्थसिद्धि)

(३) १३ और १४वाँ गुणस्थान यह ..... उपयोगका फल है। (शुभ, शुद्ध, अशुद्ध)

(४) अकेले पुद्गल परमाणुमें ..... रूप परिणमित होनेकी शक्ति होती नहीं है।
(रस, शब्द, गंध)

(५) पाँचवें गुणस्थानसे बारहवें गुणस्थान तकके आठ गुणस्थान ..... की मुख्यतासे हैं। (चारित्र मोहनीय, दर्शन मोहनीय, योग)

(६) क्षायिक सम्यक्त्व हंमेशा ..... सम्यक्त्वपूर्वक होता है।
(प्रशम उपशम, द्वितीय उपशम, क्षायोपशमिक)

(७) जीव मिथ्यात्व गुणस्थानसे सीधे चौथे, पाँचवें या ..... गुणस्थानमें जाता है।
(छठवें, सातवें, दूसरे)

(८) ..... शरीर सबसे स्थूल होता है। (औदारिक, वैक्रियक, तैजस)

(९) पूज्य गुरुदेवश्रीके वचनामृत बोल १७९में आता है कि, ''आत्माको यथार्थ समझनेके लिये प्रमाण, नय, निक्षेपरूप शुभ विकल्पका व्यवहार बीचमें आये बिना रहता नहीं, लेकिन आत्माके अनुभवके समय वे ..... छूट जाते हैं।''
(विचार, आश्रय, विकल्प)

(१०) पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत बोल ३४३में आता है कि ''वस्तुको प्राप्त करना, उसमें टिकना और आगे बढ़ना सब ..... से ही होता है।
(समझ, पुरुषार्थ, भक्तिभाव)

(११) कोई मनुष्य जन्मसे ही अंधा, बहेरा हो तो वह जीव ..... जीव है।
(संज्ञी पंचेन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय)

(१२) क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव ..... श्रेणी चढ़ सकता है।
(क्षपक, उपशम, उपशम अथवा क्षपक)

(१३) ..... नयसे आत्मा कर्मजनित भावका कर्ता भोक्ता है।(शुद्ध, अशुद्ध, निश्चय)

(१४) चंदना सतीने ..... भगवानको मुनिदशामें नवधा भक्तिपूर्वक आहारदान दिया था। (महावीर, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ)

(१५) किसी जीवको भूख लगे और भोजन न मिले उस समय जो दुःख होता है उसका कारण ..... है। (क्षुधावेदनीयका उदय, अशाताका उदय, मोह)

(१६) कुंदकुंद आचार्यदेवने समयका अर्थ आगम कहकर उसका कथन करनेकी प्रतिज्ञा ..... शास्त्रमें की है। (पंचास्तिकाय, नियमसार, समयसार)

(१७) समयसार परिशिष्ट ४७ शक्तिमें प्रथम ..... शक्ति है। (ज्ञान, विभुत्व, जीवत्व)

(१८) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमें ध्रौव्य वह ..... है। (गुण, पर्याय, द्रव्य)

(१९) आत्मा और विकारी भाव बीच ..... सम्बन्ध है। (तादात्म्य, संयोग, अनित्य तादात्म्य)

(२०) पुद्गलका लक्षण अचेतन–जड़ माननेमें आये तो ..... दोष आता है। (अतिव्याप्ति, असंभव, अव्याप्ति)

प्रौढके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

(१) वात्सल्य
(२) सर्वार्थसिद्धि
(३) शुद्ध
(४) शब्द
(५) चारित्र मोहनीय
(६) क्षायोपशमिक
(७) सातवाँ
(८) औदारिक
(९) विकल्प
(१०) पुरुषार्थ
(११) संज्ञी पंचेन्द्रिय
(१२) उपशम अथवा क्षपक
(१३) अशुद्ध
(१४) महावीर
(१५) मोह
(१६) पंचास्तिकाय
(१७) जीवत्व
(१८) पर्याय
(१९) अनित्य तादात्म्य
(२०) अतिव्याप्ति

(पृष्ठ २१ का शेष भाग) (दुःखके कारणरूप चार...)

जब तक जीव स्वयंके निराकुल स्वरूपको जाने नहीं तब तक उसको उपरोक्त चार प्रकारकी इच्छाओंका निरंतर सद्भाव होता है। वे इच्छाएँ क्यों होती है? उसे स्वयंके सुखस्वरूपका निर्णय और वेदन नहीं है इसलिये उसे स्वरूपका संतोष नहीं है और हमेशा असंतोष वर्तता रहता है, इसलिये वह परवस्तुसे सुख प्राप्तिकी इच्छा करता है। आत्मा तो ज्ञान-आनंदके स्वभाववाला कृतकृत्य है उसकी रुचि और प्रतीति करे तो परद्रव्योंके प्रति इच्छा नाश हो। लेकिन ऐसे स्वभावकी रुचि, प्रतीति या विश्वास न करे और परविषयोंके ग्रहणकी रुचि करे तो जीवकी इच्छा कभी भी समाप्त होती नहीं है, आत्माके श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रको भूलकर इच्छामें ही लीन हो गया है, वह ही दुःख है।

भरतक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकर सम्बन्धी माहिती

क्रम	तीर्थंकरका नाम	पिताका नाम	माताका नाम	जन्म नगरी	चिह्न
१	श्री ऋषभदेव	नाभिराज	मरुदेवी	अयोध्या	वृषभ
२	श्री अजितनाथ	जितशत्रु	विजयादेवी	अयोध्या	हाथी
३	श्री संभवनाथ	दृढराज	सुषेणादेवी	श्रावस्ति	अश्व
४	श्री अभिनंदन	संवर	सिद्धार्था	अयोध्या	बंदर
५	श्री सुमतिनाथ	मेघरथ	सुमंगला	विनितापुर	चकवा
६	श्री पद्मप्रभ	धारणाराजा	सुसीमा	कौशाम्बिपुर	कमल
७	श्री सुपार्श्वनाथ	सुप्रतिष्ठ	पृथ्वी	वाराणसी	स्वस्तिक
८	श्री चंद्रप्रभ	महासेन	लक्ष्मणा	चन्द्रपुरी	चंद्र
९	श्री पुष्पदंत	सुग्रीव राजा	जयरामा	काकन्दिपुरी	मगर
१०	श्री शीतलनाथ	दृढरथ राजा	सुनंदादेवी	भद्दिलापुरी	कल्पवृक्ष
११	श्री श्रेयांसनाथ	विष्णुराज	विष्णुश्री (नंदा)	सिंहपुर	गेंडा
१२	श्री वासुपूज्य	वसुपूज्य	जयावती (विजया)	चंपापुरी	महिष
१३	श्री विमलनाथ	कृतवर्मा	आर्यशामा (सुरम्या)	कांपिल्य	सूअर
१४	श्री अनंतनाथ	सिंहसेन	लक्ष्मीमती (सर्वयशा)	अयोध्या	सेही
१५	श्री धर्मनाथ	भानुराज	सुप्रभा (सुव्रता)	रत्नपुरी	वज्र
१६	श्री शांतिनाथ	विश्वसेन	एरादेवी	हस्तिनापुर	हिरन
१७	श्री कुन्थुनाथ	सूरसेन	श्रीदेवी (श्रीकांता)	हस्तिनापुर	बकरा
१८	श्री अरनाथ	सुदर्शन	मित्रसेना (मित्रा)	हस्तिनापुर	मीन
१९	श्री मल्लिनाथ	कुंभराज	प्रभावती (रक्षता)	मिथिलापुर	कलश
२०	श्री मुनिसुव्रत	सुमित्र	सोमा (पद्मावती)	कुशाग्रपुर	कछुआ
२१	श्री नमिनाथ	विजयराज	वर्मिला (वप्रा)	मिथिलापुर	नीलकमल
२२	श्री नेमिनाथ	समुद्रविजय	शिवादेवी	शौरीपुर(द्वारिका)	शंख
२३	श्री पार्श्वनाथ	विश्वसेन	वामादेवी	वाराणसी(काशी)	सर्प
२४	श्री महावीर	सिद्धार्थराजा	प्रियकारिणी(त्रिशलादेवी)	कुंडलपुर(वैशाली)	सिंह

नोट : श्री पद्मप्रभु और वासुपूज्य भगवानका रंग रक्तवर्ण, सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ भगवानका रंग हरितवर्ण, पुष्पदंत, शीतनाथ भगवानका श्वेतवर्ण, मुनिसुव्रतनाथ और नेमिनाथ भगवानका वर्ण मयूरके कंठ समान नीलवर्ण और शेष सभी तीर्थंकरोंका वर्ण तप्तायमान सुवर्ण समान था।

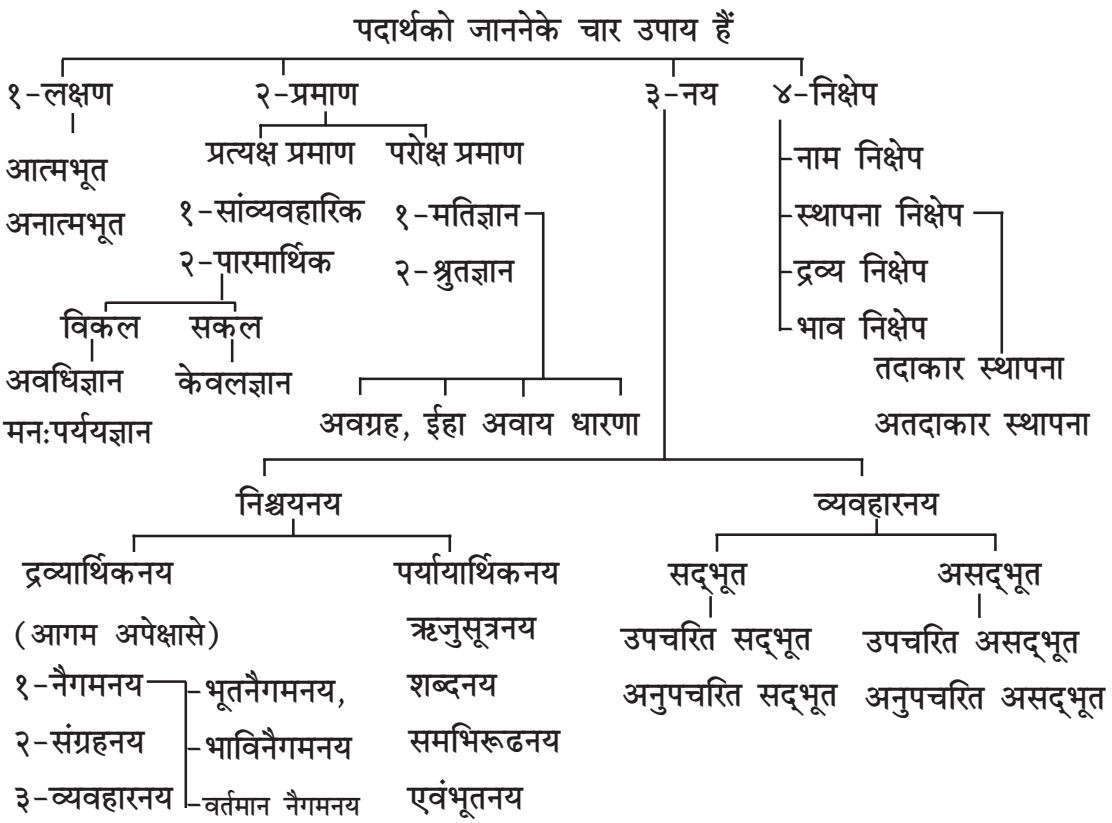

नोंध :

* लक्षणके तीन दोष हैं १-अव्याप्ति, २-अतिव्याप्ति ३-असंभव
* परोक्ष प्रमाणके अन्य पांच भेद हैं : १-स्मृति, २-प्रत्यभिज्ञान, ३-तर्क, ४-अनुमान और ५-आगम
* नयके अन्य रीतिसे तीन प्रकार हैं : १-शब्दनय, २-अर्थनय और ३-ज्ञाननय

व्यवहारनय और निश्चयनयका फल : ''वीतराग कथित व्यवहार अशुभमेंसे बचाकर जीवको शुभभावमें ले जाता है; जिसका दृष्टांत द्रव्यलिंगी मुनि है। वह भगवानके कहे हुए व्रतादिका निरतिचार पालन करता है और उससे शुभभाव द्वारा नववे ग्रैवेयकमें जाता है, किन्तु उसका संसार बना रहता है; और भगवानका कहा हुआ निश्चय शुभ तथा अशुभ दोनोंसे बचाकर जीवको शुद्धभावमें–मोक्षमें ले जाता है; उसका दृष्टांत सम्यक्दृष्टि है कि जो नियमसे (निश्चित्) मोक्ष प्राप्त करता है।''

(जीवका व्यवहार परपदार्थमें नहीं होता, किन्तु अपनेमें ही होता है। जीवका परद्रव्यके साथ सम्बन्ध बतलानेवाले सभी कथन अध्यात्मदृष्टिसे नयाभास हैं।)

॥ श्री कहानगुरुदेवाय नमः ॥ ॥ श्री सीमंधरदेवाय नमः ॥ ॥ वन्दे भगवती मातरम् ॥

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ प्रेरित तथा

श्री कहान पुष्प परिवार आयोजित

२५वीं (रजत जयंति)

बाल संस्कार अध्यात्मज्ञान शिविर

(ता. २५-१२-२०२५ से ता. ३०-१२-२०२५)

25 Silver Jubilee Years Celebration

अनंत उपकारी परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं तद् अनन्य भक्त प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके धर्मप्रभावनायोगसे हम सब मुमुक्षुगण सत्य शुद्धात्माको प्राप्त करनेका मार्ग समझ पाये हैं। यह गहरे तत्त्व संस्कारोंका सिंचन हमारे बालकोंमें भी हो यह अत्यंत आवश्यक है। इस हेतुको लक्ष्यमें रखकर श्री कहान पुष्प परिवार पिछले चौबीस वर्षोंसे बाल संस्कार शिविरोंका आयोजन कर रहा हैं। इस वर्ष भी परमोपकारी संत पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्रीकी साधनाभूमि सुवर्णपुरी-सोनगढ़में पच्चीसवीं बाल संस्कार शिविरका आयोजन किया गया है। यह बाल संस्कार शिविरकी रजतजयंति होनेसे विशेषरूपसे बालकोंके लिये धार्मिक क्लास, धार्मिक कार्निवल और सांस्कृतिक कार्यक्रम द्वारा धर्मके संस्कारोंका सिंचन किया जायेगा। इस शिविरमें **'स्वाध्याय परम तप'** सम्बन्धी शिक्षण दिया जायेगा। सभी मुमुक्षुओंको निवेदन है कि वे अपने बालकोंको शिविरका लाभ लेने हेतु अवश्य पधारें।

इस शिविरकी सभी माहिती **Kanjiswami Songadh App** डाउनलोड करनेसे मिल जायेगी। आपको अपना रजिस्ट्रेशन एवं ओनलाईन पेमेन्ट **Kanjiswami Songadh App** अथवा **Kanjiswami.org** पर करना होगा, जिससे आपकी ठहरने एवं भोजनकी व्यवस्था उचित हो सके।

इस शिविरके स्थायी सौजन्यकर्ता (१) मुमुक्षु ऑफ ग्रान्ड रेपीडस, **USA** (२) राजुल शाह, फ्लोरिडा-**USA**, मुख्य सौजन्यकर्ता का लाभ (१) श्री जितेन्द्र व्रजलाल शाह परिवार, घाटकोपर एवं सह सौजन्यकर्ताका लाभ (१) श्री एक मुमुक्षु भाई, (२) श्री रमणिकलाल लालचंद दोशी परिवार, हस्ते स्मिताबेन नरेन्द्रभाई बावीसी, सोनगढ़ (३) एक मुमुक्षु बहिन (४) श्री भरतभाई कांतिलाल कामदार, चेन्नाई परिवारको प्राप्त हुआ है।

इस शिविरमें आनेसे बालकोंको धार्मिक संस्कारके सिंचनके साथ पूज्य गुरुदेवश्री तथा पूज्य बहिनश्रीकी साधनाभूमि सुवर्णपुरीके जिनायतनोंमें स्थित जिनेन्द्र भगवंतोंके दर्शन-पूजन-भक्तिका, पूज्य गुरुदेवश्रीके कल्याणकारी सीडी प्रवचनोंका भी लाभ प्राप्त होगा। यह शिविर बालकों, युवानों एवं वडीलों (ज्येष्ठ व्यक्तिओं)के लिये रखी गई है। इस शिविरमें ता. ३०-१२-२०२५ के दिन एक दिवसीय यात्राका आयोजन किया गया है।

Shibir Help Line Number

✆ 8989646494

लि.

कहान पुष्प परिवारकी ओरसे

श्री हसमुखभाई वोरा–प्रमुखके जय जिनेन्द्र

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-१५ से ६-३५ : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप
सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१८वीं बारका) सीडी प्रवचन
दोपहर : ३-०० से ४-००: श्री समयसार कलशटीका पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन
दोपहर : ४-०० से ४-३० : श्री जिनेन्द्र भक्ति
रात्रि : ७-४५ से ८-४५ : श्री परमात्मप्रकाश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

❀ विशेष धार्मिक कार्यक्रम ❀

हमारे परम तारणहार परमोपकारी पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके वार्षिक समाधिदिन निमित्त सोनगढ़में पंचाह्निक विशेष धार्मिक कार्यक्रम, मार्गशीर्ष कृष्णा २ ता. ७-११-२०२५, शुक्रवारसे मार्गशीर्ष कृष्णा ७ ता. ११-११-२०२५, मंगलवार तक, रखा गया है। यह 'गुरु-उपकारस्मृति'का अवसर श्री पंचपरमेष्ठिमंडलविधानपूजा, जिनेन्द्र एवं गुरुभक्ति, पू. गुरुदेवश्रीके टेपप्रवचन इत्यादि अध्यात्म-ज्ञान-वैराग्य-भक्त्युपासनाप्रधान धार्मिक कार्यक्रम पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनके गुरु-भक्तिभीगे मार्गदर्शन अनुसार वीतराग देव-गुरुकी भक्ति एवं वीतराग तत्त्वज्ञानकी कल्याणी उपासनापूर्वक सादगीसे मनाया जायेगा।

(पृष्ठ २७ का शेष भाग) (वालिखिल्यकी कथा)

विभूतिके साथ सामने आयी और नगरमें बड़ा उत्सव हुआ। राजा राजकुमारको हृदयसे लगाकर अपने रथमें बिठाकर नगरमें प्रवेश किया। राणी पृथ्वीमती भी हर्षसे रोमांचित हुई। पतिका आनेसे उसका शरीर पुनः जैसा था वैसा सुंदर हो गया। सिंहोदर आदि वालिखिल्यके हितचिंतक सभी राजी हुए। कल्याणमाला पुत्रीने इतने दिन पुरुषका वेश धारण करके राज्यको अखंडित रखा यह बातसे सभीको आश्चर्य हुआ। गौतमस्वामी राजा श्रेणिकको कहते है कि हे नराधिप! परद्रव्यको हरनेवाला, देशका कंटक ऐसा रौद्रभूत श्री रामके प्रतापसे वालिखिल्यका आज्ञाकारी सेवक हुआ। जब रौद्रभूत वश हुआ और म्लेच्छोंकी विषम भूमिमें वालिखिल्यकी आज्ञा प्रवर्ती तब सिंहोदर भयभीत होकर और अतिस्नेहसे सन्मान करने लगा। वालिखिल्य रघुपतिके प्रसादसे परम विभूतिको पाकर शरदऋतुमें सूर्य जैसे प्रकाशे वैसे पृथ्वीपर प्रकाश फैलाने लगा और अपनी रानी सहित देवसमान सुख भोगने लगा।

आत्मधर्म सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचना

आप सभी हमारे मुमुक्षु हैं। हिन्दी आत्मधर्म आपको बहुत समयसे भेज रहे है। अब ट्रस्टने निर्णय लिया है कि जो ग्राहक १५ वर्षसे अधिक समयसे है उनको अब आगामी अंक भेजना बंद किया जायेगा। यदि जिन्हें आत्मधर्म मासिक पुनः चालु करवाना चाहते हो तो वे आत्मधर्म कार्यालयको एक संमतिपत्र भेजे जिससे आपको पुनः ५ वर्षके लिये अंक रीन्यु किया जायेगा। इसलिये आप अपना उचित उत्तर (संमति पत्र) भेजे उसके अनुसार आपको अंक भेजा जायेगा।

इसके अलावा यदि आप फीझीकल कोपी नहीं चाहते हो और **email** अथवा **whatsapp** पर **PDF** चाहते हो तो उस अनुसार आपको भेजनेमें आयेगा।

आप अपना संमतिपत्र : आत्मधर्म कार्यालय अथवा मेल अथवा वोटसेप पर भेज सकते है।

आत्मधर्म कार्यालय,
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (जि. भावनगर)

email contact@kanjiswami.org
Whatsapp No 9276867578

सम्मति पत्र

प्रति श्री आत्मधर्म कार्यालय

मैं .....

सूचित करता हूं कि आपके द्वारा भेजे जानेवाला आत्मधर्म अंकका हम नियमित पठन एवं स्वाध्याय करते है। तथा किसी भी प्रकारका अविनय अशातना हमारे द्वारा नहीं हो रही है। इसलिये हमारा आत्मधर्म अंक रीन्यु करनेकी विनती करते है।

आत्मधर्म फिझीकल /**email** / **whatsapp.....** ..... द्वारा हमें भेज देंगे।

ग्राहक नंबर : .....

नाम : .....

पता : .....

.....

.....

संपर्क नंबर : .....

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्गार

• प्रश्न : प्रथम चारित्र ले लेवे व बादमें सम्यक्त्व करे तो ?

उत्तर : जैसे जमीन-बिना वृक्ष नहीं उगता, वैसे ही ''मैं अखण्ड चैतन्य हूँ''—ऐसी प्रतीति-बिना चारित्र कहाँसे हो ? नहीं होता है। चारित्र अर्थात् चरना स्थिर होना—किसमें...देहमें ? वह जो जड़ है। पुण्य-पाप विकार हैं। शुद्ध चैतन्य-स्वरूपकी प्रतीति होनेके बाद, अंतरमें लीनता हो - वह चारित्र है।७१८।

• सत्यमें दुःख नहीं है। दुःख तो अज्ञानके कारण लगता है। मद्य बेचने वालेको मद्यके निषेधक बुरे लगते हैं, इसलिए क्या मद्य-पान बन्द न करें ? क्या ऐसी कोई चीज है जो पूरे जगतको अच्छी लगे ? अतः जो सत्य है उसीको सत्य मानना। ब्रह्मचर्यके बखान करनेसे यदि व्यभिचारीको बुरा लगे, तो क्या ब्रह्मचर्यके बखान नहीं करने चाहिए ? सत्य बात करने पर अज्ञानीको तो अज्ञानके कारण दुःख लगता है। अतः सत्य सदा ही प्रिय है।७१९।

• लोग जिसे मानव-धर्म कहते हैं, ज्ञानी उसे अधर्म कहते हैं। मैं मनुष्य हूँ जो ऐसा माने वह अधर्मी है। मेरा स्वभाव ज्ञान है—ऐसे चेतना-विलासको आत्म-व्यवहार कहते हैं। देहकी क्रिया आत्म-व्यवहार नहीं है, वैसे ही पुण्य-पाप भी आत्म-व्यवहार नहीं है। आत्मा शुद्ध-चैतन्यस्वभावी है। उसकी श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक वीतरागता प्रकट करना आत्म-व्यवहार है। ऐसी शुद्धदशासे च्युत होनेसे ही अज्ञानी जीव क्रिया-काण्डको अपनाता है। संसारमें परदेशसे कमाई कर-आने वाले अपने पुत्रके सिरको बाप छातीसे लगाता है, वैसे ही मिथ्यादृष्टि जीव पुण्य-परिणामको छातीसे लगाए रखता है; उन समस्त भावोंको क्रिया-कलाप कहते हैं। यह क्रिया की, ये पदार्थ छोड़े, यह यात्रा की—ऐसे समस्त क्रिया-कलापको ही अपनाते हैं; ऐसे मनुष्य व्यवहारका आश्रय कर रागी-द्वेषी होती हैं।७२०।

• जिन-धर्म तो वीतराग स्वरूप है। जिनधर्म किसे कहना तथा उससे विपरीत अन्य धर्म क्या है—यह जानना चाहिए। जिनधर्म तो वीतराग-स्वरूप अर्थात् निज-शुद्धात्माकी अपेक्षा व निमित्तादिकी उपेक्षा स्वरूप है। जब तक पूर्ण वीतरागता प्रकट न हो तब तक जिन-प्रतिमाकी पूजा-वंदना-भक्ति आदि होती है; परसे उपयोग पलट कर आत्मदर्शन करनेका हेतु व लक्ष्य होता है—ऐसा जिनमत है। ७२१।

३६
आत्मधर्म
नवम्बर २०२५
अंक-३, वर्ष २०

Posted at Songadh PO
Publish on 5-11-2025
Posted on 5-11-2025

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org